वितस्ता

हिन्दी परिषद्
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय कश्मीर
की
मुख पत्रिका

सम्पादक

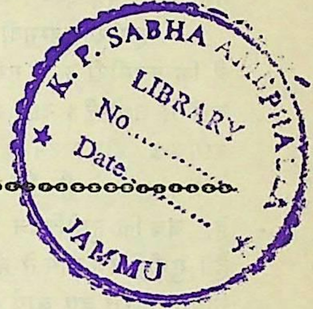
डा० रमेश कुमार शर्मा

वसन्त अंक



खंड ८, अंक १

क्रम



सम्मतियाँ

R. C. Kaul "Abhai"
PANDIT PORA, P. O. RAINAWARI
SRINAGAR
JOURNALIST/ARYA MISSIONARY

Srinagar-3, Dated 30-3-1972

सेवा में—

मान्यवर डा० रमेशकुमार शर्मा
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, कश्मीर ।

प्रिय शर्माजी,

वितस्ता का वसंत अंक (खंड ७ अंक १) मिला, जिसके लिये हार्दिक धन्यवाद। वितस्ता को बड़ा रोचक पाकर पूरे का पूरा पढ़ डाला । डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' और श्री अनूप भादूडी की सम्मतियाँ पढ़ कर मैंने जान लिया कि 'वितस्ता' का शिशर अंक (६-१) मैंने नहीं देखा है इस कारण उसकी खोज की, बच्चों से पाकर इस अनमोल कमी की भी पूर्ति हो गई ।

जीवन भर उर्दू का सम्पादन करता रहा । १९१४ ई० से लाहौर और अमृतसर के उर्दू पत्रों में लिखना आरंभ किया था । संभव है, कश्मीर का पहला पत्रकार मैं हूँ किन्तु हिन्दी पर अपनी सम्मति देने से हिचकिचाता रहा । मुख पृष्ठ पर 'सम्मति के लिये' देख कर लिखने का साहस हुआ । कॉलिजों और यूनिवर्सिटियों की पत्रिकायें देखता रहा । मेरा पोता अपने कालिज की पत्रिका ले आया । बड़ा भारी पोथा था किन्तु उस में प्रो० एल० एन० दर के एक विद्वत्तापूर्ण लेख के अतिरिक्त मेरे लिये और कुछ आकर्षक न था । 'भारतीय विद्याभवन' की पत्रिका भी रोचक होती है परन्तु 'वितस्ता' उच्च कोटि की पत्रिका है, जो इसको देखेगा गुण गायेगा ।

श्री त्रिलोकी नाथ गंजू के कश्मीरी भाषा सम्बन्धी लेखों से मैं हर्षित होता हूँ कि कश्मीरी भाषा को फिर अपना स्थान प्राप्त होने वाला है । श्री गंजू का नाम

अमर होगा। सर जार्ज ग्रीयर्सन बाईस भाषाओं पर अधिकार रखते थे। किन्तु थे वह एक ईसाई पादरी ही। किन कारणों से उन्होंने कश्मीरी को दरद भाषा की पुत्री बतलाया, ईश्वर जाने, जबकि यह भाषा प्राचीन वैदिक भाषा की पुत्री है।

हमारे अहम्मदी भाई इस भाषा को अबरानी भाषा बतलाते हैं और कहते हैं कि कश्मीरी लोग सुमीर और बाबुल से यहाँ आये हैं और कश्मीरी भाषा भी वहाँ से लाये हैं। डा० अज़ीज़ अहम्मद एक विचित्र मनुष्य हैं, जो अपने को भगवान् रामचन्द्र और लक्ष्मणजी आदि का अवतार मानते हैं। वह अखबार और रेडियो से प्रचार करते हैं कि कश्मीरी लोग और उनकी भाषा बाबुल और सुमीर से आई हैं, जब कि सुमीरियन 'सुमीर प्रदेश' कश्मीर से भाषा और सभ्यता लेकर वहाँ गये हैं। सुमीरियण नाम से ही यह सिद्ध होता है। रूस, जर्मन, इटली, फ्राँस और इंगलैण्ड निवास करते हुए आर्य लोग यहाँ से तब गये, जबकि वैदिक आर्य भाषा के बहुत से शब्दों का उच्चारण बिगड़ गया था। मुझे पूर्ण आशा है, कि श्री त्रिलोकीनाथ गंजू इस काम को पूरा करेंगे। और संसार को दिखला देंगे कि कश्मीरी वैदिक आर्य भाषा है जो कहीं विदेश से नहीं आई है।

डा० रमेश कुमार की कविताएँ "ये बोझे-भीतर के" "सन्नाटा" और "कश्मीर में बसन्तागम", तीनों सार गर्भित हैं। मैं बार-बार पढ़ता रहता हूँ। इसी प्रकार कविवर नज़ीर अकबराबादी डा० मुहम्मद अयूबखाँ 'प्रेमी' और श्री शशि शेखर तोषखानी की कविताए सुन्दर हैं। डा० भूषणलाल कौल की 'लद्दाख यात्रा' 'महादेव और हरिश्वर के पहाड़ों की यात्रा' से कश्मीर के सुन्दर स्थानों पर प्रकाश पड़ता है।

दूसरी पत्रिकाओं में रिक्त स्थानों पर चुटकले आदि होते हैं, जबकि वितस्ता में ऐसे स्थानों पर संसार के प्रसिद्ध विद्वानों के बहुमूल्य बचन, वेदों के मंत्र, उपनिषदों, गीता, और रामचरित मानस की चौपाई, श्लोक और वाक्य तथा दोहे आदि होते हैं, जो सम्पादक की विद्वत्तापूर्ण योग्यता दर्शाते हैं और पाठकों को लाभ पहुँचाते हैं।

नीलमत पुराण प्राचीन नहीं—

कुछ लेखकों ने नीलमत पुराण का उल्लेख करके नागों आदि के सम्बन्ध में लिखा है कि नील ऋषि ने ऐसा लिखा है। वास्तव में यह पुराण किसी ऋषि की कृति नहीं है। श्री पं० हरगोपाल कौल 'खस्ता' गत शती में कश्मीर केसरी थे। उन्होंने 'गुलदस्ता कश्मीर' के नाम से कश्मीर का इतिहास लिखा है, जिसको लिखे सौ वर्ष हो गए हैं। उसमें उन्होंने लिखा है कि नीलमत पुराण श्री चन्द्राचार्य ने लिखा है। वैसे भारत के अठारह पुराणों तथा उपपुराणों में इस का कोई उल्लेख नहीं हैं। नागों आदि का उल्लेख भी इस में प्राचीन नहीं। कश्मीरियों को नागों की सन्तति मानना ठीक नहीं है।

यह लिखना भी यथार्थ नहीं कि 'इतिहास के उषा काल से ही कश्मीर एक

शाक्त-भक्त का देश रहा है।' काश्मीर में ही वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है। कल्हण ने इतिहास पर प्रकाश डाला है धर्म पर नहीं। शाक्त धर्म अर्थात् वाममार्ग जब भारत के अन्य पर्वतीय प्रदेशों में फैला है, तब कश्मीर में वाममार्ग के भैरवी प्रचार को शैवकर्म का नाम दिया गया है, फिर भी, कश्मीर में वैदिक कर्म (जो कुछ वेद मंत्रों को छोड़कर पौराणिक कर्म ही हैं) के बाद वाममार्गी शाक्त कर्म जिसको शैव कर्म कहा जाता है, किया जाता है। मृतक के शरीर को भैरवों में बाँटा जाता है आदि। शैव कर्म तथाकथित वैदिक कर्म के पीछे किया जाता है क्योंकि वाममार्गी शाक्त कर्म जिसको शैव कर्म कहा जाता है, सभी कश्मीरियों को मान्य था। कुछ केवल वैदिक कर्म ही कहते हैं। इस पर विस्तार से प्रकाश डालना आवश्यक है।

आपका

राम चन्द कौल 'अभय'

....

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रेषक—

डा० विजयपाल सिंह

एम० ए० (हिन्दी), एम०ए० (संस्कृत),
पी-एच० डी०, डी० लिट्

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

दिनांक २०-४-१९७२

श्रीयुत शर्माजी

'वितस्ता' का बसन्त अंक (खण्ड ७ अंक १) मिला। तदर्थ अनुग्रहीत हूँ। आपने काश्मीर में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के साथ-साथ हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है, वह अद्वितीय है। 'वितस्ता' का नियमित प्रकाशन इस बात का प्रमाण है कि लगन के द्वारा सभी कार्यों में सफलता मिल सकती है। आज भारतवर्ष के कितने विश्वविद्यालय विभागीय पत्रिका नियमित रूप से निकालते हैं ? मुझे तो आप से स्पर्द्धा होती है।

'वितस्ता' में आप छात्र छात्राओं की रचनाओं को भी लेते हैं, यह एक शुभ लक्षण है। शोध, निबन्ध, कविता, कहानी तथा हिन्दी-परिषद् की गतिविधियाँ सभी कुछ तो 'वितस्ता' में विद्यमान है। ऐसी सुन्दर एवं उपयोगी पत्रिका के लिये मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

भवदीय

विजयपाल सिंह

डा० रमेशकुमारजी शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०
प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

श्री

कुशल बेंगलूर-१६

सहृदय दोस्त रमेश जी,

सादर प्रणाम

आपकी भेजी वितस्ता पहुँची । धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ । विचार पूर्ण है । सचमुच अच्छी योग्यता रखती है । आप तो साधारण मनुष्य नहीं हैं । स्व० श्रीराम शर्माजी के ज्येष्ठ पुत्र हैं । शास्त्र में है कि ज्येष्ठ पुत्र पिता तुल्य ही है । सिंह के गर्भ से सिंह ही तो पैदा होता है न ? सन्तोष की बात है कि आप बदन से हृष्ट-पुष्ट हैं और चश्मा पहनने लगे हैं । मैं भी ठीक आपकी ही तरह हूँ । लेकिन काय-शक्ति उतनी नहीं है । आपको तस्वीर में देख सका । कभी भी इधर आने की कृपा कीजिये ।

आपका

विनयावनत

एन० वी० अनन्त रामय्या, पण्डित

दूरवाणी नगर बेंगलूर-१६

....

Dr. P. Jayaraman.
M.A., PH.D., D. LITT.,
HINDI OFFICER,
RESERVE BANK OF INDIA
Central office, P. B. No. 406,
Bombay-1

BOMBAY

6th. May 1972

आदरणीय डा० शर्माजी,

सादर नमन ।

कश्मीर विश्वविद्यालय की हिन्दी परिषद् की मुख-पत्रिका 'वितस्ता' का वसन्त अंक मिला । देखकर अत्यंत आनन्द हुआ । भारतीय संपर्क भाषा हिन्दी और उसके साहित्य के विकास एवं श्रीवृद्धि में 'वितस्ता' का योगदान महत्वपूर्ण उपलब्धि है । 'कश्मीरी भाषा के शब्द वातायन से', 'कश्मीरी कृष्ण-काव्य का उद्भव' आदि निबन्ध एवं अन्य रचनाएँ आपके विभाग के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं की लगन, निष्ठा एवं तीक्ष्ण प्रतिभा का परिचय कराती हैं । 'चारों ओर छाये हुए सत्यानाशी जिघांसा के नशे' का चित्रांकन करने वाली कविता का भावानुवाद आपने अतिशय प्रभावकारी किया है । 'नीना कौल' ने दर्द के रंगीन दायरों को थोड़े से शब्दों में समेटकर और वृत्तों-आवर्तों में बँधने और खुलने की साँप्रतिक जीवन-प्रक्रिया को संक्षेप में, परन्तु प्रभविष्णुतापूर्ण शैली में अभिव्यंजित कर वर्तमान विभीषिकापूर्ण जीवन-संदर्भ को रूपायित कर दिया है । आपकी 'कश्मीर में वसन्तागम' शीर्षक की कविता के बिंबों का आस्वाद लेकर मेरा भोला मन सोचने लगा कि काश, तत्काल

देव-भूमि कश्मीर में मुक्त विचरण कर पाता । वितस्ता के समस्त लेखक बन्धुओं का मैं अभिनन्दन करता हूँ ।

शैव और वैष्णव दर्शन की समन्वय-भूमि कश्मीर की सांस्कृतिक पत्रिका 'वितस्ता' की उत्तरोत्तर प्रगति की मंगल कामना करता हूँ ।

आभार सहित,

भवदीय

पु० जयरामन

....

शशिभूषण सिंहल
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

डी-१, यूनिवर्सिटी कैम्पस,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

११-४-१९७२

आदरणीय भाई शर्माजी,

'वितस्ता' का वसन्त अंक (खंड ७, अंक १) मिला । धन्यवाद । पत्रिका के पिछले अंक भी पाता रहा हूँ । प्रस्तुत अंक चाव से पढ़ गया हूँ । कश्मीर जैसे अहिन्दी प्रदेश में इतनी सुरुचि और सफाई से यह पत्रिका बराबर निकल रही है, यह बात निस्सन्देह उल्लेखनीय है । कश्मीरी हिन्दी प्रेमियों को शेष हिन्दी जगत् के समीप लाने में आपका यह उद्योग सफल एवं सराहनीय रहा है ।

हिन्दी पदिषद् की गतवर्ष की गतिविधि पढ़ कर मालूम होता है कि आप के विभाग के अध्यापक और विद्यार्थी उत्साहपूर्वक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गति-विधियों में भाग लेकर साहित्य को जीवन के माध्यम से हृदयंगम कर रहे हैं ।

इस अंक की कवितायें विशेष आकर्षक बन पड़ी हैं । 'हम देख रहे हैं आज' (माशूकुर्रहमान चौधरी), 'पीले चाँद के शहर में' (मुहम्मद अयूब ख़ाँ 'प्रेमी') तथा 'कश्मीर में वसन्तागम' (डा० रमेशकुमार शर्मा) कविताओं में पाठक के मन को छूने की क्षमता है । इन की बिम्ब-योजना देखते बनती है ।

डा० मदान का 'धन्यवाद' प्रखरता लिए हुए है ।

बधाई सहित,

आपका

शशिभूषण सिंहल

....

रणजीत कुमार साहा, रिसर्च फैलो
हिन्दी भवन : विश्वभारती,
शांतिनिकेतन,
२६-५-७२

मान्यवर—

सादर प्रणाम।

आपकी विभागीय तथा हिन्दी परिषद् के तत्वावधान में प्रकाशित होने वाली पत्रिका **'वितस्ता'** के अंक देखता रहा हूँ। सराहनीय एवं स्पृहणीय प्रयास के लिए—साधुवाद !

संप्रति खंड ७, अंक-१ मेरे सामने है। इस अंक का सबसे बड़ा आकर्षण है डॉ० इन्द्रनाथ मदान का अविरल भाषण। उनकी शैली इतनी पैनी है कि सरकारी मुखौटों को पहनने वाले मुलजिमों का चेहरा तक सूख जाये। डा० कौल की 'लद्दाख यात्रा' पढ़कर मैं भी मानस यात्री बनकर रह गया हूँ। श्री गंजू एवं राज़दानजी का क्रमशः भाषा विषयक निबंध एवं शोध अंश बहुत ही परिश्रम पूर्वक लिखा गया है। पुस्तकाकार रूप में इन विषयों को पाकर हिन्दी साहित्य समृद्ध होगा।

आपने बंगला में श्री माशूकुर्रहमान की तथा अंग्रेजी से श्री पाब्लो नरूदा की कविता का अनुवाद साधिकार रूप से किया है—आपकी हिन्दी कविता 'कश्मीर में वसंतागम' भी बड़ी रमणीय है। आपका कोई कविता संग्रह प्रकाशित है ?

आपके विभागीय छात्राओं की रचनाओं में जो भी स्वर उभरा है, वह प्रेम या प्रेमजनित 'टूटन' का है। यह फ्रस्ट्रेशन जीवन से जुड़ा है, इसलिए बड़ा ही मुखर है। शामासेठी की भाषा ने दुखती हुई रगों पर जैसे अँगुलियाँ रख दीं। रचना जैसे भाव-कविता थी।

इतनी सुन्दर पत्रिका का मुखपृष्ठ भी सुन्दर होना चाहिए, जैसा कि अनूप मादुड़ीजी की पत्र-प्रतिक्रिया (पृ० ६) में भी कहा गया है।

आपकी टीम अगर बंगला देश जा रही है, तो शांतिनिकेतन भी इस सिलसिले में एक पड़ाव का काम कर सकता है। व्यक्तिगत रूप से यदि मेरा कश्मीर आना सम्भव हुआ, तो अवश्य ही आपके और आपके विभाग के दर्शनार्थ आऊँगा। कृपया पत्रिका के सभी सहयोगियों को मेरी शुभकामनाएँ पहुँचा दें।

सादर,

विनीत
रणजीत कुमार साहा
२६/५/७२

सेवा में,
डा० रमेशकुमार जी शर्मा,
हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय

....

PHONE : 6521-25

THE POST GRADUTE DEPARTMENT OF URDU
UNIVERSITY OF KASHMIR
SRINAGAR

DATED 18. 3. 1972

प्रिय डा० शर्मा

'वितस्ता' का नया अंक मिला जिसके लिए आपका और आपके विभाग के दूसरे साथियों का आभारी हूँ। इतना अच्छा, साफ, सुथरा अंक निकालने पर आप सबको और आपके विद्यार्थियों को बधाई। आपने मेरी राय माँगी है मगर मैं हिन्दी विभाग के ऐसे अच्छे काम पर कोई फैसला देने योग्य अपने को नहीं समझता।

आपका
मुहम्मद हसन
(प्रोफेसर तथा अध्यक्ष)

Dr. R. K. Sharma
Prof. & Head
Dept. of Hindi
University of Kashmir, **Srinagar**

....

P. K. KUNHIRAMAN,
M. A. (Hin.) M. A. (Mal.) B. Ed.
HEAD OF THE DEPARTMENT OF HINDI
PAYYANUR COLLEGE, PAYYANUR

NIVAS
POORNIMA
PAYYANUR

Date 10. 5. 72

सेवा में—

डा० रमेशकुमार शर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, **काश्मीर**

महोदय,

सुदूर दक्षिण से आगरा गया था, पिछले दिसम्बर में। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान में अन्य अहिन्दी भाइयों के साथ कश्मीर-बंधुओं के भी सामीप्य का सौभाग्य मिला था। निकट संपर्क से मालूम हुआ था कि भिन्न-भिन्न भाषा व वेश-भूषा के होते हुए भी कैसी एकता है उत्तर-दक्षिण के भाव तथा विचार में।

कश्मीर-बन्धुओं ने मुझे हिमावृत तरल प्रकृति सुषमा का वाचिक रूप दिखाया था उन दिनों, अब वितस्ता ने कन्याकुमारी तक आकर कश्मीर-वैभव के दिग्दर्शन करा दिये, लिपियों में !

काश्मीरी भाषा के वातायन से होकर मैंने कृष्ण-भक्ति का प्रसाद पाया ; प्रकृति की विभूति पायी ।

रुद्राद्रि-मौलि पर श्रद्धा के चरणों से चढ़ कर केरल की विभूति के दर्शन किये, देवभूमि के ऋषिवर के आगे सिर नवा दिया, भावना में ।

वितस्ता की यह बड़ी कृपा हुई कि उसने अपने हिम-शीतल स्पर्श से हृदय में भाव तरंगें उत्पन्न कर दी है ।

सचमुच मैं 'वितस्ता' से प्रभावित हूँ और शुभकामना करता हूँ कि दिन दूनी रात चौगुनी इस ज्ञानदायिनी की श्रीवृद्धि हो ।

हिन्दी-गंगा के विकास में वितस्ता तथा कुमारी का योगदान रहे ! वसंत अङ्क के लेखक बन्धुओं को हार्दिक बधाइयाँ ।

आपका

पी० के० कुंजिरामन्

....

तार-"राष्ट्रभाषा" वर्धा — फोन–४५

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

रामेश्वरदयाल दुबे — हिन्दीनगर, वर्धा
परीक्षा-मन्त्री ३४/४० — ता० १८-४-७२

आदरणीय शर्माजी

सप्रेम प्रणाम ! वितस्ता का 'वसन्त अङ्क' प्राप्त हुआ । कृपा के लिये आभारी हूँ ।

अङ्क में आपने अच्छी सामग्री संजोई है । बधाई ! नवोदित लेखकों का हृदय से स्वागत ! हमारे भावी साहित्यकार इन्हीं में तो छिपे हैं ।

हिन्दी परिषद् की गतिविधियाँ पढ़ कर बड़ा सन्तोष हुआ । काश्मीर जैसे दूरस्थ हिन्दीतर प्रदेश में हिन्दी के लिये किये जाने वाले ये प्रयत्न सराहनीय हैं ।

'काश्मीर में वसन्तागम'—अच्छी लगी । काँगड़ी की उपमा वानरी के मृत-शिशु से देकर जो चित्र खींचा, भव्य है ।

एक नम्र सुझाव !

कृपया 'वितस्ता' में काश्मीर सम्बन्धी कुछ सामग्री इस प्रकार विशेष रूप से देते रहें जिससे अन्य प्रदेश के पाठकों के लिये 'वितस्ता' एक खिड़की बन जावे और वे उसके माध्मम से काश्मीर को अधिक जान सकें, पहचान सकें ।

'वितस्ता' के दर्शन होते रहें—यही अपेक्षा रहेगी ।

आपका

रामेश्वरदयाल दुबे

....

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास
हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसन्धान विभाग

Dr. G. Bala Subrahmanyam
Senior Teacher.

THYAGARAYANAGAR
MADRAS-17

प्रिय सम्पादक महोदय,

आपकी पत्रिका के एक प्रति के संप्रेषण के हेतु बहुत धन्यवाद। निश्चित रूप से पत्रिका का स्तर स्नातकोत्तरीय है, वसंत की सारी उत्फुल्लता लेकर काश्मीर से यहाँ पहुँची है। अहिन्दी प्रांतीय हिन्दी भाषियों का यह माध्यम चिरकाल तक विराजमान रहे, यही मैं कामना करता हूँ।

आपका
सुब्रमण्यम

....

डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत)
पीएच० डी०, डी० लिद

रीडर, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राज०)

दिनांक १३-४-१९७२

प्रिय बन्धु डा० शर्मा,

'वितस्ता' का वसन्त अंक मिला। श्री अनूप भादूड़ी का पत्र बहुत उपयोगी लगा। वितस्ता का स्तर बाढ़ में 'वितस्ता' की तरह बढ़ रहा है! 'वितस्ता' के इस अंक को कविताओं में समकालीन मनःस्थितियाँ हैं और आज का ही मुहावरा है। आत्म-संघर्ष आज के व्यक्ति की केन्द्रीय मनःस्थिति है, यही नीना कौल, और अयूब साहब (प्रेमी) की रचनाओं में है। बस, अगले कदम में, काश्मीर के कवि 'व्यवस्था' के विरुद्ध विद्रोह करेंगे क्योंकि हमारे अधिकतर संकटों का कारण, विषम सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था है। काश्मीर में यह "व्यवस्था" उतनी नहीं अखरती, पर इधर, प्रत्येक रचनाकार, इसी से लड़ रहा है और इसी दबाव से चौथाई शताब्दी के इस विद्रोह से ही, सरकार, समाजवाद को राजकीय नीति के रूप में स्वीकार करने को बाध्य हुई है। समाजवाद की सच्ची स्थापना से जातिवाद, प्रान्तीयतावाद, साम्प्रदायिकतावाद तथा मानव-मानव के बीच जो आज अलगाव और तज्जन्य संत्रास है, वह समाप्त हो सकेगा।

अब की बार, कहानियों में भी, समसामयिक बोध आया है—"सहनशील नारी ही हो……आखिर किस लिए ?……तुम में प्रतिशोध की भावना लुप्त क्यों हो

गई है ?"—शीला रैना का यह बोध नया और मानवीय है। भाषा में सूक्ष्मता और आनी चाहिए।

'वितस्ता' की परम्परा के अनुसार, 'कश्मीर' से सम्बन्धित लेख रोचक और शिक्षाप्रद हैं। इधर के पाठकों के लिए इनका महत्व अत्यधिक है। लद्दाख के विषय में और सामग्री जानी चाहिए।

आपकी कविता, 'कश्मीर में वसन्तागम' के दो बिम्ब, 'चिनार-रूपी प्रहरी' तथा 'कश्मीरी जनता अपनी काँगड़ी छोड़ नहीं पाती'—सटीक हैं—नानार्थक। मुझे इस कविता की भाषा से एतराज़ है, संस्कृतीकरण से कविता पुरानेपन का आभास देती है फिर बोलचाल के शब्द ('प्रहरी' की जगह 'पहरेदार', 'हसन्ती' की जगह 'कँगड़ी' कितना सांकेतिक है।) अधिक आत्मीय और ध्वन्यात्मक होते हैं बहरहाल।

डा० मदान का वक्तव्य ज़ोरदार रहा पर उसमें कोरी नम्रता नहीं, सच्चाई भी है! पाब्लो नरूदा, और नज़ीर मियाँ की रचनाएँ आज के सन्दर्भ के अनुरूप हैं।

सूक्तियों का चुनाव, मज़ेदार है। इनमें दो सांकेतिक हैं।

आपका

वि० ना० उपाध्याय

....

Professor
T. Seshadri M. A.,
Associate Professor of Hindi,
Madurai College' MADURAI-11.

MADURAI-11

' 25. 5. 72

संपादक वितस्ता

प्रिय महोदय,

सप्रेम वन्दे।

आप का भेजा वितस्ता का वसंनंक मिला एतदर्थ सस्नेह धन्यवाद।

आंखों में संप्रति बीमारी का आवास है। उस अनपेक्षित अतिथि को निकाल भगाने के प्रयत्न में समय कट रहा है। तो भी रोज दो-एक लेख या पृष्ट ही पढ़ रहा हूँ। जितनी जल्दी हो सके, पूरा करके सम्मति लिख भेजूंगा।

यों तो अब भी कह सकता हूँ कि पत्र का स्तर काफी उच्च है; प्रयास स्तुत्य है।

फिर से धन्यवाद के साथ

आपका

ति० शेषाद्रि

....

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
कलकत्ता विश्वविद्यालय,
आशुतोष भवन,
कलकत्ता-१२

प्रिय डा० शर्मा,

वितस्ता का वसन्त अंक मिला। धन्यवाद। वितस्ता का प्रत्येक अङ्क कश्मीर की सुरभि, श्री और सुषमा से पूर्ण है। विभाग के छात्र-छात्राओं की रचनात्मक ऊर्जा और सर्जनात्मक प्रतिभा इसके माध्यम से पुष्ट और परिपक्व हो रही है—इसका सारा श्रेय आपको एवं आपके सहयोगियों को है—मेरी बधाई स्वीकार करें। मैंने स्वयं यह अनुभव किया है कि साहित्य का पठन-पाठन केवल कुछ पाठ्य ग्रंथों तक सीमित नहीं रहता न रहना चाहिए। जीवन की उन्मुक्तता साहित्य का सहज और सार्थक बोध है—इसके लिए जो नए आयाम और गवाक्ष चाहिए—वे 'वितस्ता' दे रही है—खोल रही है।

आपकी कविता 'कश्मीर में वसन्तागम' बहुत अच्छी है। बिम्बों की सार्थकता केवल ऐन्द्रिय-बोध में न होकर, मानवीय चेतना की गहराइयों को स्पष्ट और संतुलित रूप से अभिव्यक्त करने में है, जो उसके रागात्मक चैतन्य को उद्बुद्ध कर सके—आपके सारे बिम्ब ऐसे ही बन पड़े हैं।

आपके पिताजी का कर्म क्षेत्र बंगाल रहा—और इस नाते भौगोलिक दूरी के बावजूद हमारे प्रदेश भावनात्मक एक्य के साथ-साथ रागात्मक सामंजस्य भी रखते हैं—एक नैकट्य-मानस-संबंध—

पुनः बधाइयाँ,

डा० रमेशकुमार शर्मा

आपका
ह० अस्पष्ट

....

तारकनाथ बाली
रीडर हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली—९
दिनांक ६-४-१९७२

प्रिय रमेशजी,

आपके विभाग की पत्रिका 'वितस्ता' प्राप्त हुई। धन्यवाद। इस में संकलित सामग्री को देखते हुए यह नहीं लगता कि यह केवल आपके विश्वविद्यालय की विभागीय पत्रिका भर है—लगता है जैसे यह श्रीनगर से निकलने वाली हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका है, जो वहाँ के हिन्दी जगत् की रचनात्मक गतिविधियों को भी व्यक्त करती है।

'वितस्ता' के सम्बन्ध में मेरा एक सुझाव है। यदि आप सत्र में एक ऐसी

गोष्ठी का आयोजन करें, जिसमें कश्मीरी साहित्य की किसी एक विधा का विश्लेषण हो, या हिन्दी तथा कश्मीरी साहित्य से सम्बद्ध किसी विषय पर विचार-विमर्श हो और इस गोष्ठी में पढ़े जाने वाले निबन्ध और उन पर हुई परिचर्चा को भी 'वितस्ता' में छापा जाए तो पत्रिका का महत्व और भी बढ़ जाएगा। इस गोष्ठी का आयोजन आप हिन्दी विभाग की ओर से भी कर सकते हैं अथवा 'वितस्ता' की ओर से भी यह आयोजन किया जा सकता है।

आशा है 'वितस्ता' के आगामी अंक और भी महत्वपूर्ण होंगे।

सस्नेह
तारकनाथ बाली

....

ज्ञान शील एकता

सुरेन्द्रमोहन कान्त — १५२६-२२ बी
मन्त्री — **चण्डीगढ़**
अ. भा. वि. प. पंजाब प्रदेश — दिनांक ६-७-७२

बन्धुवर डा० रमेशकुमार शर्मा,

नमस्कार! आपके सम्पादकत्व में सम्पादित 'वितस्ता' का 'वसन्तंक' पढ़ने को मिला! 'वितस्ता' में डूबने का प्रयास किया, और लगा कि इसकी पैठ काफी गहरी है। मुझे यह कहने में कोई अतिशयोक्ति दिखाई नहीं देती कि 'वितस्ता' हिन्दी महासागर की जलनिधि में और सक्रिय व महत्त्वपूर्ण योगदान देगी। गुरुदेव इन्द्रनाथ मदानजी का 'धन्यवाद' वास्तव में एक सशक्त रचना है। 'रंगीन दायरे' (नीना कौल) व 'शीर्षक हीन' रचनाएँ अपने आपमें पूर्ण हैं व आधुनिक बोध का प्रमाण हैं।

मैं भी हिन्दी विभाग में स्नातकोत्तर द्वितीय वर्ष (पंजाब विश्वविद्यालय) का छात्र हूँ। आशा करता हूँ कि आप मुझे नियमित रूप से 'वितस्ता' का पाठन करने का अवसर देते रहेंगे।

हिन्दी के विकास हेतु 'वितस्ता' सदा प्रवाहमान होता रहेगा, ऐसी ईश्वर से प्रार्थना है।

अगले अंक की प्राप्ति की आशा में,

आपका हिताकांक्षी,
सुरेन्द्रमोहन कान्त
हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, **चण्डीगढ़**

....

वितस्ता

(१९७३—वसन्तंक)



महो अर्णः सरस्वती
प्र चेतयति केतुना
धियो विश्वावि राजति ।।

ऋ–१।३।१२

[सरस्वती, (जो) महा (ज्योति) सागर है
अपनी ज्योति से प्रकाशित करती है :
वह सभी बुद्धियों को भास्वर करती है]

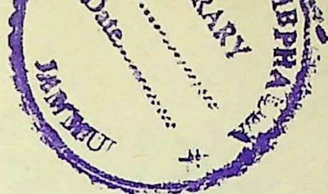
स्व० महाकवि नज़ीर अकबराबादी

भैरोंजी

देखा है जबसे मैंने, तेरा जमाल भैरों
रखता हूँ तब से दिल मैं, तेरा ख़याल भैरों
दिन-रात है यह मेरा तुझसे सवाल भैरों
अब दर्द-ओ-ग़म से आकर, मुझको संभाल भैरों
तेरी सरन गही है, कर तू निहाल भैरों
ए प्रतिपाल देवता, मदमस्त, काल भैरों ॥

आखों में छा रहा है, तेरा सरूप काला
तन में भभूत गहरी गल बीच मुण्डमाला
आखें दिया-सी रोशन, हाथों में, मैं का प्याला
हूँ दिल से दास तेरा, सुन ए मेरे दयाला
तेरी सरन गही है, कर तू निहाल भैरों
ए प्रतिपाल देवता, मदमस्त, काल भैरों ॥

क्या-क्या मची है, तेरे दरबार की बहारें
भगती कला पै तेरी, जी जान अपना वारें
सब अपना-अपना कारज मन-मानता संवारें
सेवक चरन को चूमें, इष्टी खड़े पुकारें



तेरी सरन गही है, कर तू निहाल भैरों
ए प्रतिपाल देवता, मदमस्त, काल भैरों ॥

माथे पै तेरे टीका, सैंदूर का बिराजे
मद पीवें, मांस खाते जो तू करे सो छाजे
त्रिशूल कांधे ऊपर, डाँरू की गत भी बाजे
सब तज के मैंने अब तो, तेरी दया के काजे
तेरी सरन गही है कर तू निहाल भैरों
ए प्रतिपाल देवता मदमस्त, काल भैरों ॥

तू राक्षसों के तन से, हर आन सिर उखाड़े
चाहे जिसे बसावें, चाहें जिसे उजाड़े
जो तुझ से दूबदू हो, इस आन में लताड़े
दानों को चीर डाले, दैत्यों को धर पछाड़े
तेरी सरन गही है, कर तू निहाल भैरों
ए प्रतिपाल देवता मदमस्त, काल भैरों ॥

है कौन अब निकले, तुझ मस्त से अकड़कर
दुष्टों को लात-मुक्के, मूजी के सिर को टक्कर
कृपा है तेरी, मेरे हक में तो कन्द शक्कर
अब सब तरह से मैंने, तेरी दया को तककर
तेरी सरन गही है, कर तू निहाल भैरों
ए प्रतिपाल देवता मदमस्त काल भैरों ॥

मेरा तो कोई इस जा अपना है न बिगाना
बेकस, हूँ, बे हुनर हूँ, और है बुरा जमाना
ए वेकसों के वाली, मेरी मदद को आना
तेरे सिवा किसी जा, मेरा नहीं ठिकाना,
तेरी सरन गही है, कर तू निहाल भैरों
ए प्रतिपाल देवता मदमस्त, काल भैरों ॥

० ० ० ० ० ०

त्रिलोकीनाथ गंजू एच० एस०, एच०
एच०, बी० एड०, एम० ए०
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय

कश्मीरी भाषा के शब्द वातायन से

वितस्ता पत्रिका में स्थायी स्तंभ के रूप में 'कश्मीरी भाषा के शब्द वातायान' का यह पंचम प्रकाशन है। इस स्थायी स्तम्भ का मुख्य प्रयास यह है कि भारतीय विद्वज्जन स्पष्टरूपेण कश्मीरी भाषा के शब्दकोश से अवगत हो सकें तथा योरोपीय विद्वानों द्वारा प्रचारित भ्रान्त धारणा की पूरी समीक्षा स्वयं आंकने का प्रयत्न करें।

स्व० ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा को पैशाची वर्ग के दरद उपकुल में रखा है और इस भाषा को शिना-विभाषा से उद्‌भूत माना है, जो वास्तव में निराधार तर्क है। कारण कि एक अविकसित भाषा किसी भी रूप में जननी का पद ग्रहण करने में समर्थशील नहीं हो सकती है। भौगोलिक दृष्टि से भी शिना भाषा-भाषी प्रदेश यद्यपि कश्मीर के उत्तर-पश्चिम में अवस्थित है पर दुर्गम पर्वतों के कारण संचार व्यवस्था अल्लंघनीय रही है, जो अब भी है। शिना की तीन बोलियाँ हैं—गिलगती, द्रासी और गुरेसी। राजधानी तथा हरमुख पर्वत श्रृंखला इसे कश्मीर से विछिन्न करती है।

कश्मीरी भाषा वैदिक-प्राकृत की एक अपभ्रंश प्राकृत है, जो अनादि काल से अपने विशिष्ट परिवेश में व्यवहृत होती रही है। धीरे-धीरे इसका सम्बन्ध साहित्यिक प्राकृतों से विछिन्न हुआ और आज यह एक ऐसी प्राकृत है, जिसका स्वरूप वैदिक, पाली, प्राकृत अपभ्रंश से समिश्रित विभाषा के



एम० ए०(उत्तरार्द्ध) १९७१-७२ के छात्र। कुर्सियों पर बाँये से : इन्द्रजीत कौर (मंत्री), डा० भू० ला० कौल, डा० मुहम्मद अयूब खाँ (उपसभापति), डा० रमेश कुमार शर्मा (विभागाध्यक्ष), श्री त्रि० ना० गंजू (प्रवक्ता); कु० नीना कौल (प्रवक्ता), कु० यश सूरी (उपमंत्री)।

रूप में उपसृष्ट हुआ है। स्व० ग्रियर्सन स्वयं इस तथ्य से पूर्णतया सचेत थे। अतः इस साक्ष को उन्होंने स्वयं स्वीकार भी किया है।[1]

प्रस्तुत स्तम्भ में समस्त शब्द एवं धातु पाणिनि-पूर्व काशकृत्स्न व्याकरण के आधार पर दिए हैं। काशकृत्स्न का समय ई० पूर्व सातवीं शती के आस-पास ठहरता है। अतः शब्दानुशासन की दृष्टि से कुछ ऐसे धातु शब्द काशकृत्स्न व्याकरण में उपलब्ध होते हैं, जो पाणिनि के समय तक जन सामान्य प्रयोग के महत्व को खो चुके थे पर कश्मीरी भाषा में अब भी इन शब्दों का दैनिक प्रचलन है।

कश्मीरी	संस्कृत	हिन्दी
१—राहं[2]	अपराध	अपराध
२—छअंल	छिल्ल	टुकड़ा
३—वंुषुणं	उष्ण	गर्म
४—जस्रअं	अजस्र	झड़ी, भीड़
५—हेर[3]	हेड	सीढ़ी
६—वाल	वाल	बाल
७—मअंकुण्णं	मत्कुणः	कलीली
८—म्योण्डअ	मड्डि	कौर
९—क्युल	कीलम्	कील
१०—हिअंल[4]	शैवालः	सिवार

१. कश्मीरी :—'वखईल्य्'। मूलधातु—'वुख चलने', वोखते। अर्थ :—वुख धातु चलने के प्रति है। कश्मीरी में विशेषतया पैदल चलने के प्रति है। हिन्दी :—पैदल।

२. कश्मीरी :—'बअसुन'। मूलधातु—'वसनिवासे', वसति। वस् धातु निवास के प्रति है। हिन्दी :—निवास करना, रहना।

---

१. ग्रियर्सन : कश्मीरी भाषा का वर्ग-विभाजन, भाग ८, खण्ड २।

२. 'राह' कालिदासीय प्राकृत "अवराहो" (शाकुन्तलम्) कश्मीरी में अग्रिम 'अव' का लोप।

३. डलयो रलयो अभेद।

४. कश्मीरी में प्रायः 'श', 'ह' में परिणत होता है और 'व' शून्यस्थ हुआ है।

३. कश्मीरी :—'श्रअंपुण ।' मूलधातु— श्रपाके, श्रपयति । श्रा धातु पचने के प्रति है । हिन्दी :—पचना, हज़म होना ।

४. कश्मीरी :—'प्रिंछुनअं' । मूलधातु—प्रछ ईप्सायाम्, पृच्छति । प्रच्छ धातु पूछने के प्रति है । हिन्दी :—पूछना ।

५. कश्मीरी :—'लोनुनअं' । मूलधातु :—'लुन छेदने', लुनाति । लुन धातु काटने के प्रति है विशेषतया फसल काटने के प्रति है । हिन्दी :—फसल काटना । (ब्रज-लावनी)

६. कश्मीरी :—'चअटुन' । मूलधातु :—'चुट छेदने', 'चुटयति या चष्टनम् । चुट धातु काटने के प्रति है । हिन्दी :—काटना ।

७. कश्मीरी : ख्योनं । मूलधातु :—खै खादने, खायति । खै धातु खाने के प्रति है । हिन्दी :—खाना ।

८. कश्मीरी :—च़ालुन् । मूलधातु :—'चव चलने सहने च' । चवति—पीडा निवर्तयति । चव धातु चलने और सहने के प्रति है । हिन्दी :—सहना ।

९. कश्मीरी :—च़उल । मूलधातु :—'चुल चुल्ल द्रावकरणे पाकाग्निकुण्डे च' चुल्लति—पाकं करोति । चुल या चुल्ल धातु चूल्हे के प्रति है । हिन्दी :—चूल्हा ।

१०. कश्मीरी :— ज़ाफं । मूलधातु :—'जाप जुप आलस्ये', जापति । जाप अथवा जुप धातु आलस्य के प्रति है । हिन्दी :— आलस्य, सुस्ती ।

० ० ० ० ० ०

टूटी फूटी फ्रेंच बोलने वाले एक नेताजी, कान्फ्रेन्स में भाग लेकर जब फ्रान्स से लौटे तो लोगों ने उनसे पूछा 'आपको भाषा की कठिनाई तो नहीं हुई ?' वे बोले "नहीं, बिल्कुल नहीं ! हाँ वहाँ के लोगों को हुई होगी ।"

० ० ० ० ० ०

'ईर्ष्या का जन्म सदा प्रेम के साथ होता है, लेकिन उसका अन्त भी प्रेम के साथ ही हो, यह आवश्यक नहीं ।'

—एक फ्रेंच कहावत

वीणाकुमारी एम० ए० (पूर्वार्द्ध)

व्यवहार

हाँ में हाँ हो
जेब में दाम हो
और कदम के साथ कदम हो
तभी संसार की
सांसारिकता निभ सकती है
क्योंकि,
इसमें न मन का मूल्य होता है
और न
अश्रुओं का।

जब सारा गम झेल लो
तब हाल पूछ लेते हैं,
जब सारी खुशी चुक जाये
तब बधाई दे जाते हैं।
मन के पुल बँधवाते हैं,
परन्तु परिस्थितियाँ
उसको ही
मिटाने की बनाते हैं।

जिस सिद्धान्त को
सब से पवित्र कहते हैं
उसी पर
घोर अन्याय लादते हैं ।
परीक्षा में पुस्तक सी
स्वतन्त्रता देकर
आँखों ही आँखों में
नम्बरों पर डाका
डाल लेते हैं ।

काँटेदार झाड़ी लेकर
दुलार से सहलाते हैं ।
अपने ही सत्य को
हल्की सी मुस्कान में
झुठला जाते हैं ।
मुस्कानों का बहलाना
उनके हँसमुख
चेहरों का एक
नया विशेषण बन जाता है ।

० ० ० ० ० ०

दन्ति दन्त समानाहि निसृतं महतां वचः ।
कूर्मग्रीवेष नीचानां पुनरायाति याति च ।।

—भर्तृहरि

[बड़े लोगों के वचन हाथी के दांतों के समान हैं, निकले तो वैसे ही रहे (बदलते नहीं है) नीच लोगों के कछुए की ग्रीवा के समान हैं, निकलते हैं और फिर भीतर चले (बदल) जाते हैं ।]

फूला राज़दान एम० ए०, अनुसंधित्सु
हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय

कश्मीरी कृष्ण-काव्य का उद्भव एवं विकास

कश्मीरी कृष्ण-भक्ति-शाखा के अग्रणी महाकवि परमानन्द के पश्चात् कृष्ण-राज़दान का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म वीस नवम्बर सन् १८५० ई० में अनन्तनाग से तीन मील दूर 'वनपोत' नामक गाँव में हुआ तथा निधन अक्टूबर सन् १९२५ ई० में हुआ।

श्री राज़दान ने अपनी शैशवावस्था में ही वेदों, उपनिषदों तथा अन्य शास्त्रों का गहन अध्ययन कर लिया था। कश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान महा-

---

* यह लेख लेखिका के 'कश्मीरी भाषा में कृष्ण भक्ति-शाखा का विकास एवं साहित्य' नामक पहले लेख का ही पूरक है। 'वितस्ता' के विगत-प्रकाशन में लेखिका के 'कश्मीरी-भाषा में कृष्ण-भक्ति शाखा का विकास एवं साहित्य' लेख के अन्तर्गत हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि किन परिस्थितियों में कश्मीरी भू-भाग इस साहित्यिक चिन्तन से समृद्ध हुआ और 'कृष्णायन' के कश्मीरी कवि-सम्राट् परमानन्द तक आते-जाते इस कड़ी की चरमावस्था किस प्रकार दिखाई दी कारण परमानन्द ने भक्ति की उन्मेषिणी भावविह्वलता से अभिशिक्त करके दर्शन की अन्तः बहिः प्रवृत्ति को चेतनात्मक धरातल पर स्थापित किया। निस्सन्देह इस तथ्य को पुष्टमार्गी कवि भी सफलता से निभा नहीं सके। यद्यपि इस सामंज्जस्य का अंश कश्मीर भूमि का उद्भूत शैवदर्शन ही है पर उसे भी कृष्ण रंग में रँगकर महाकवि परमानन्द ने कश्मीरी कविता में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। अवश्य ही परमानन्द कश्मीरी कृष्ण-काव्य के सूरदास हैं।

महोपाध्याय मुकुन्दराम शास्त्री से शिक्षा प्राप्त की थी। शिवजी इनके आराध्य देव रहे हैं। उनका यह कथन इसका प्रमाण है—

शिवकर्मी छुस कृष्ण राज़दान
शिवजी मंन दोरहोयं च्योन ध्यान
शु'भलख्यन प्रथशयि च्योन थान
सदाशिव समियो वन्दयो वान ।।[1]

अर्थात् "मैं कृष्ण राज़दान शिव धर्म में दीक्षित हूँ। हे शिव, मैं नित्य तेरे ध्यान में ही मग्न रहता हूँ। तुम्हारे शिव स्वरूप की व्याप्ति सर्वत्र है। फिर हे शिव, तुम्हारे ऐसे रूप पर मैं क्यों न बलि-बलि जाऊँ।"

इनकी उत्कृष्ट कृति का नाम 'शिवपरिणय' अथवा 'शिवलग्न' हैं। कई महानुभाव 'शिवपरिणय' तथा 'शिवलग्न' को अलग-अलग मानते हैं।[2]

शिवलग्न का आरम्भ भारतीय परम्परा के अनुरूप ही श्रीगणेश के मंगलाचरण से हुआ है—

ओंमकार रूप छुक सर्वआधिकारो,
मूलाधार ध्यान धारंयो।
स्यंदि दाता छुक विघ्न-हरतारो,
महागणपतं ध्यान धारयो ।।[3]

"ओंमकार रूप में ही सर्वअधिकारी उस परम सत्ता का ध्यान धरता हूँ और मूलाधार से उस सिद्धिदाता, विघ्नहर्त्ता गणपति (गणेश) के चिन्तन-मनन में ध्यान-मग्न होता हूँ। ध्यान धरूँ मूलाधार से हे स्वामी,

---

१. शिवलग्न यानि हरिहरकल्याण।
२. श्री आज़ाद एवं डा० रैना ने अपनी पुस्तकों में में 'शिवलग्न' तथा 'शिवपरिणयं' को भिन्न-भिन्न पुस्तकें माना है। जबकि वास्तव में दोनों पुस्तकें एक ही है। सम्भवतः उक्त दोनों समीक्षकों ने इस पुस्तक के दर्शन ही नहीं किये हैं। उन्होंने यों ही भ्रान्त कल्पना करली है—
"शिवलग्न और शिवपरिणय कृष्ण राज़दान की दो तसनीके हैं—कश्मीरी जुबान व शायरी"—श्री आज़ाद। "कृष्ण राज़दान की दो काव्य-रचनाओं का उल्लेख मिलता है।" —डा० शिवन कृष्ण रैना
३. हरिहर कल्याण

हे सिद्धदाता, औं विघ्न-हर्त्ता, ध्यान मग्न होऊँ गणपति मनन में।" इस कृति के अतिरिक्त इन्होंने कश्मीरी कृष्ण-लीला-काव्य का भी निर्माण किया है, जिसमें श्रीकृष्ण का जन्म, प्रभात-लोरी, बालसुलभ चेष्टाएँ, गोपियों का विरह-वर्णन, आदि की बड़ी ही भावविदग्ध अभिव्यक्ति की है।

रासलीला पर इन्होंने सुन्दर काव्य-रचनायें की हैं। कश्मीरी हिन्दू अपने विवाहों, उत्सवों पर श्री राज़दान की लीलाओं का ही अधिकांशतः गायन करते हैं, क्योंकि इन लीलाओं में सरसता, माधुर्य, प्रभावोत्पादकता तथा संगीतात्मकता का रसात्मक पुट अधिक मिलता है।

रास की परिभाषा देते हुए श्री राज़दान लिखते हैं—

शुद्ध जागृ'तकुय व्यशीष रास गंव
सुय अभ्यास गव गूपियन रद
संकल्पन त व्यकल्पन छ्यन गव

अर्थात् "शुद्ध जागृत का विशेष रास उभर आया। गोपियाँ उस अभ्यास में निमग्न हो गईं। उनके मन की संकल्प और विकल्प रूपी कड़ियाँ छिन्न-भिन्न हो गईं।"

रास क्रीड़ा के अन्तर्गत श्री राज़दान ने गोपियों की विह्वलता एवं भाव-विभोरता का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। भेद से अभेद की स्थिति का सामंजस्य यौगिक प्रक्रिया का एक ज्वलन्त उदाहरण है। श्री राज़दान इसी का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

नन्दलाल आव गिन्दने रास
आर कूरिवी आरय

अर्थात् क्रीड़ा हेतु नन्द छैला आया है। अतः समवृत्ताकार होकर खेल का सआरम्भ करो।

अथवा

समिथ करव अथवास
पकिव रास निन्दने

अर्थात् "समचेतना से रास हेतु मिल जाओ। खेल और खिलाड़ी विलय की स्थिति में आनन्दित हो उठें।"

श्री राज़दान के रास में क्रीड़ा-कन्दुक ही नहीं अपितु एकात्मक अनुभव की प्रतीति भी है। वास्तव में गोपियाँ स्वतः 'आत्मनर्तकी' के रूप में प्रस्तुत होकर महाव्योम की अपार और असीम शक्तियों में विलय के लिए सतत प्रयत्नशील हैं।

इसी अकाट्य तर्क के द्वारा गोपियाँ उद्धव के योग का खण्डन करके उसे एक नवीन दीक्षा देती हैं। यदि तुलनात्मक अध्ययन के दृष्टिकोण से इस तथ्य का निरीक्षण किया जाए, तो अष्टछाप के कवियों में इस कथ्य का नितांत अभाव नहीं है पर उत्कर्ष की उर्वरा भूमि प्रस्तुत करने की क्षमता भी उनमें नहीं हैं—

अंसि कंमि बापथ् करवं त्याग
अंसि गंछि आलुनं कृष्णुन् राग
सुय गव तप जप यूग अभ्यास्

'क्योंकर हम जग से विरत वैरागी बनें। हमें कृष्ण का प्रशासन हो वही है तप, जप योग अभ्यास' है। योग तथा दर्शन की रचनाएँ प्रस्तुत करने में भी यह महाकवि किसी से पीछे नहीं रहे हैं। डललीला[1] (सरोवर लीला) इनकी प्रसिद्ध तथा उत्कृष्ट कविता है। कवि ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि के साथ सरोवर से उत्पन्न सभी वस्तुओं का प्रयोग परोक्ष रूप में किया है :—

संर कों'र संसार नदरूय[2] द्राव
डल म होश च्यतकीय पम्पोश छाव
बन्द कर लूभि संकल्पुक वाव
वानय पंकि प्रारम्भदि च नाव

यह कितना आश्चर्यजनक संयोग है कि सूर की निम्नलिखित पंक्तियाँ कृष्ण राज़दान के उक्त उद्गारों से साम्य रखती हैं—

देखि नीर जू छिलछिलौ, जग समुझि कछु मन माँहि
सूर क्यों नहीं चलें, उड़ि तहँ बहुरि उड़वौ नाँहि।[3]

१: कमलपूर्ण सरोवर को कश्मीरी भाषा में 'डल' कहते हैं। वास्तव में इसका संबंध शतदल से है।

२. निसदण्डसारवत इव" महाभारत धौम्य्वर्णन्। कश्मीरी भाषा में बिस को नधुर कहते हैं अर्थात् न+धरा जो जमीन से नहीं, उत्पन्न होता हो"

३. सूर सौरभ—सम्पादक—आचार्य तिवारी पृ० ७३।

निष्कर्षतः कश्मीरी कृष्ण काव्य परम्परा के अन्तर्गत कृष्ण राज़दान एक महान् तथा उच्चकोटि के कवि रहे हैं।

इस परम्परा की कड़ी में श्री कविवर मनवटी का नाम विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि इनका योगदान कश्मीरी एवं हिन्दी अभिव्यक्ति के प्रति एक समान रहा है। यद्यपि परमानन्द ने इसका श्रीगणेश किया था, पर इसका विकसित रूप जिस भाव-प्रेषणीयता के साथ श्री मनवटी ने अभिव्यक्त किया है, उतना अन्य किसी ने नहीं। उनका यह प्रयास अवश्य ही हिन्दी साहित्य के लिये अहिन्दी भाषा-भाषियों का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जायेगा। मनवटी के चिन्तन में दर्शन की गम्भीरता के साथ-साथ उच्चकोटि की भावुकता दृष्टिगोचर होती है। एक सिद्धहस्त कलाकार की तरह उन्होंने दर्शन और काव्य का बड़ा सुखद सम्मिश्रण प्रस्तुत किया है—

नेर्' विकल्प न्यस्पन्दज़ न्यरद्वन्द्वेय परिपूर्ण परमानन्दय

'वह ब्रह्म निर्विकल्प, निस्पन्दन और निर्द्वन्द्व है।' पर जिस यथार्थ को दार्शनिक भी नेति-नेति कह कर पुकारते हैं, वही चरम आनन्ददाता भक्तों के हित के लिये अवतीर्ण होकर अज्ञात को ज्ञात अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष कर देने में समर्थ होता है—

सिरधर मुकटा आनन्द कंदा
हरे गोविन्दा कृष्ण मुकन्दा

श्रीमनवटी के पश्चात् कश्मीरी कृष्ण-काव्य परम्परा में श्री लक्ष्मण जुव बुलबुल का नाम उल्लेखनीय हैं। 'बुलबुल' श्री परमानन्द जी की शिष्य-परम्परा में ही आते हैं। कतिपय विद्वानों का कथन है कि परमानन्द के 'राधा स्वयंवर' की पूर्ति इन्हीं के द्वारा सम्पन्न हुई थी। इनकी बहुत सी रचनाएँ मिलती हैं, जिनमें 'नलदमयन्ती' आदि काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। श्रीकृष्ण चरित के प्रति भी इनकी लेखनी अपार कौशल से उभर उठी है।[1] जिस योग प्रक्रिया का निरूपण कबीर ने बड़ी ही कर्कश वाणी

१. हीकृष्ण च्'य शुभ दर्शुन हावतम्
अच्युत चरणामृत म्य चावतम्
संतचित आनन्दमयं तत्वं भावंतम्

में किया था, उसी का बुलबुल ने बड़ी ही सरसता और बड़ी ही भाव-विदग्धता से वर्णन किया है।[1] इस दृष्टिकोण से बुलबुल अष्टछाप के प्रमुख कवि सूर के समकक्ष रखे जा सकते हैं—

जिहि सरोवर कमल कमला, रवि बिना बिकसांहि
हंस उजज्वल पंख निर्मल अंग मलि मलि न्हांहि

श्री बुलबुल के भक्तिपूर्ण पदों में कहीं-कहीं हिन्दी पदों का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है। उदाहरणार्थ—

ऐसा शुभ वेला कब आये
जब कांछी बन्सरी को बजावे
सन्मुक हांके हमको सुनावे
बहुत गोपियां साथ श्याम अकेला
खेलन से लूट लिया मन मेरा
दुनिया मेला आनन्द कन्दा

श्री बुलबुल के पश्चात् इस परम्परा की कड़ी में मानजुव अतार का नाम उल्लेखनीय है। इनका ज्ञान और स्वाध्याय निस्संदेह अन्तः प्रकृति के भावों एवं चिन्तन के क्षेत्र में विशाल है। ये भागवत् के एक विशेष प्रवक्ता एवं अधिकारी पण्डित हैं। अतः इनका क्षेत्र भागवत् की सीमा में ही (अधिकतर कश्मीरी में) अभिव्यक्त हुआ है। प्रकृति की कुछ कृपा भी इन पर रही है फलतः इन्हें जीवन के अस्तित्त्व के लिए अधिक प्रयत्नशील एवं संघर्षशील नहीं होना पड़ा। चिन्तन के सामंजस्य हेतु उर्वरा भूमि के लिए इन्हें शास्त्र-ज्ञान की अनुकंपा भी उपलब्ध रही है। अतः इन्होंने ठेठ भागवत-पद्धति के आधार पर ही श्रीकृष्ण का स्वरूप प्रस्तुत किया है।

(क्रमशः)

० ० ० ० ० ०

---

१. शूडशि उलकुय बोज महिमा
ततिछुय जीवात्मा-परमात्मा
विशुद्ध चंकुक शुद्ध भाव प्रान
सहस्र उलसंय प्रदंक्षण फेरं
गु'र आंक्षायि किन वंति वंत नेरं
जगतस मंज्ज भगवत गीत ग्यव

इन्द्रजीत कौर एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
मंत्री, हिन्दी परिषद्, हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय

निज सन्देश

स्वजीवन स्वल्प है बन्धु,
कर उत्पन्न परहित कसक।
सगर्व, स्नेह-रंजिता चुनरी ओढ़
बाँट ले मानवता का नयनोदक ॥

कलित सुरभित-कुसम विविध,
मनुजत्व के अभिनव उद्यान खिला,
उठकर यहाँ करुणाद्रि से बरबस
प्रबुद्ध ज्ञान का आलोक दिखा।

संशोधन कर निष्प्रभ खण्ड को,
दे सबको अवलम्ब की चमक
भयप्रद-अन्तर्हित-कसकन के तिमिर को
ज्योति-पुञ्ज स्नात कर।

उन्मन-तृषित है जो जग
कल्पना से उसमें प्रीति की कान्ति जगा
सहिष्णुता के भर अणु उनमें
उत्पन्न कर मनोभीष्ट झलक

० ० ० ० ० ०

त्रिलोकीनाथ गंजू
एच० एच०, एच० एस०, बी० एड०
एम० ए०, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

कश्मीरी भाषा के सम्बन्धुः शब्द

प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर किसी भाषा के उद्गम को परखने के लिए संबन्धुः (किन्स् नेम्ज़) अथवा पारिवारिक सम्बन्ध-शब्दावली को लेकर उसके स्रोत का कुछ-कुछ पता लगाया जा सकता है। श्री विलियम जोन्स के पूर्व युरोप के भाषा-वैज्ञानिक इस प्रकार के स्रोत के अभाव में युरोप की भाषाओं को सैमेटिक भाषाओं के साथ मिलाने का वृथा प्रयास कर रहे थे। श्री जोन्स ने सर्व प्रथम युरोपीय विद्वानों के लिये तुलनात्मक भाषा-अध्ययन का द्वार उन्मुक्त किया। निस्सन्देह यह भारोपीय एवं भारत-ईरानी भाषा विज्ञान के लिये एक स्वर्ण अवसर था। इसके उपरान्त समस्त योरोपीय विद्वानों ने संस्कृत भाषा की अखण्डता को स्वीकार करके; इसके मौलिक उत्स के अन्वेषण में भागीरथ प्रयत्न किए और अब भी कर रहे हैं। आरम्भ में जो समानताएँ भारोपीय भाषा-परिवार में ग्रहण की गई थीं, उन में सर्वनाम, संख्यावाचक एवं सम्बन्धुः सम्बन्धी शब्द ही थे। इसके उपरान्त भारोपीय-ध्वनि आदि को लेकर एक गम्भीर अध्ययन हुआ। इसी परिप्रेक्ष्य में हम कश्मीरी भाषा की 'सम्बन्धु' शब्दावली को लेकर भारत की अन्य आर्य भाषाओं के साथ इसका एक तुलनात्मक अध्ययन करके वस्तु-स्थिति को अपने पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास करेंगे। 'वितस्ता' पत्रिका के विगत लेख में "कश्मीरी सर्वनाम" का कलेवर इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि कश्मीरी भाषा के सर्वनाम

मागधी और शौरसेनी प्राकृत के निकटतम ठहरते हैं और रूपसाम्य में "शिना भाषा" से इसका किंचित भी सम्बन्ध नहीं है। प्रत्यक्ष तो यह है कि कश्मीरी भाषा का भू-भाग अपने में नितान्त प्राचीन एवं एकांकी है। यह भारतीय आर्य भाषा की प्राकृतों की एक सामञ्जस्य थाती है, जिसमें सब प्राकृतों का स्वरूप उपलब्ध होता है।

मैं इस लेख में कश्मीरी भाषा के निकटतम सम्बन्धुः शब्दों को लेकर उनका भारतीय आर्य-भाषा से सम्बन्धित स्वरूप प्रस्तुत करके व्युत्पति देने का प्रयास करूँगा।

कश्मीरी भाषा में "रिश्तेदार" के लिए प्रचुरतया "आंशनाव" शब्द का प्रयोग होता है। इस शब्द का उल्लेख यजुर्वेद के रूद्रस्तव में इसी प्रकार मिलता है 'नमो युवाभ्यो नमः आशिनेभ्यः।' सिद्धान्त कौमुदी में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है :—'इष्टाशंसनाशीः'। वस्तुतः इसकी मौलिक धातु 'अंश' अथवा 'आशि' है। वैदिक काल में आर्य-जन जिस गोचर भूमि में सह-भोज्य किया करते थे और जिस भोजन के खाने में एक प्रकार की तृप्ति रहती थी—उसे 'आशिन्' शब्द से व्यवहृत करते थे। उसी सन्दर्भ में उभर कर कश्मीरी भाषा का 'आशनाव' शब्द स्थिर हुआ। कश्मीरी में प्रत्ययान्त के रूप में 'आव' क्रिया का आगमन हुआ है—

'आशिन+आव' 'अव आगमने' के धातु-क्रिया संलग्नता के कारण अर्थ की प्रतीति इस प्रकार से हुई है, 'आया हुआ सम्बन्धी'। संभवतः प्राचीन समय में यातायात के साधन अप्राप्य होने के कारण यदाकदा ही सम्बन्धी एक दूसरे के पास आते होंगे। इस कारण क्रिया-संलग्न संज्ञा का स्वरूप जातिवाचक संज्ञा के स्वरूप में प्रयुक्त हुआ है। दूसरी सब से प्रमुख बात यह है कि मूलतः आशिन् शब्द भारत-ईरानी है। अतः भ्रान्ति का होना अनिवार्य है।

कश्मीरी भाषा में पिता के लिए प्रचुर रूप में 'मौल' शब्द का प्रयोग होता है। इस एकमात्र शब्द को पकड़कर ही श्री ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा को शिना-भाषा के समीपस्थ एवं उससे उद्भूत माना है। पर वह इस तथ्य की उपेक्षा कर बैठे कि 'मौल' शब्द वास्तव में अनार्य नहीं अपितु भारतीय आर्य-भाषा का शब्द है। 'मौलि'[1] शब्द का अर्थ है—मुकट,

---

१. विलियम मोनियर संस्कृत कोष।

गृहाधिपति, व्रज या गोत्र का अधिपति अथवा ज्येष्ठ। वैदिक सभ्यता में कुटुम्ब का सर्वोच्च नायक पिता[1] ही समझा जाता था और इसी के अधीन परिवार का नियंत्रण हुआ करता था। 'मोल' शब्द वास्तव में 'मूल धारणे' धातु से उद्‌भुत है, अर्थात् समस्त कुटम्ब को धारण करने वाला। जिस प्रकार मूल समस्त वृक्ष की शाखाओं उपशाखाओं को धारण करके उनका रस से आसिचन करता है उसी प्रकार 'मोल', पिता समस्त परिवार का आपोषण करता है। 'मोल' शब्द के अतिरिक्त कश्मीरी में पित्, पितअ् तथा पितो का प्रयोग श्री भट्ट अवतार ने अपने 'बाणासुर कथा'[2] में बहुलता से किया है।

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में यदि इसका मूल्यांकन किया जाए, तो यह अधिक समीचीन होगा। कश्मीर की घाटी पर दारदीय चक्र या चक्क वंश का राज्य एवं आधिपत्य एक शतक से अधिक समय तक रहा है अतः उस समय अवश्य इनकी भाषा का प्रभाव कश्मीरी पर पड़ा होगा, क्योंकि 'मोल' शब्द का प्रयोग समस्त दारदीय भाषा में है। दक्षिणीय भाषाओं को छोड़कर शेष समस्त भारतीय भाषाओं में पिता के लिए प्रयुक्त नाम 'बाबू' बाप, पिता, पीड, बापू, बडील आदि प्रचलित हैं।

कश्मीरी भाषा में पुत्र के लिए प्रचलित शब्द नेचुव है। वैदिक सभ्यता में व्रात्य-क्षत्रिय तथा अवर्ण[3] संभोग से जन्मे सन्तान को निच्छिवि कहते हैं। कश्मीर के इतिहास में जैन-उल-आब्दीन से पूर्व कश्मीरी हिन्दुओं के लिए एक ऐसा नर-संहार का युग आया, जब कुछ ही हिन्दू परिवार शेष रहे, बाकी सभी धार्मिक द्वेष के कारण अकारण ही मौत के घाट उतारे गए। उस समय तक कश्मीर में वर्ण-व्यवस्था का पूर्ण क्रम था। पर ऐतिहासिक कठोर प्रहार के कारण वर्ण-व्यवस्था का रखना सम्भव न रहा, क्योंकि नगण्य संख्या शेष रही थी। अतः संयुक्त रूप में वे समस्त ब्राह्मण ही बने। नवीन सामाजिक विधान में पति ब्राह्मण था तो पत्नी शूद्रा अथवा पत्नी ब्राह्मण वंशजा थी तो पति क्षत्रिय। अतः वर्ण आदान-

---

१. कश्मीरी व्यवहारिक-भाषा में माता पिता के लिये मूलाधार पु० लिं० मूलाधारिन्य स्त्री लिं० का प्रचुर प्रयोग है।

२. शतिकण्ठ के 'महानय प्रकाश' के उपरान्त दूसरा कश्मीरी भाषात्मक 'बाणासुर-कथा' काव्य है। इस की रचना ई० चौदहवीं शती में हुई है।

३. चौदहवीं शती का कश्मीर नरेश।

प्रदान में शुद्धत्व का लोप सर्वथा हुआ और नव्य जातक को ठेठ वैदिक शब्द से व्यवहृत किया गया अर्थात् 'निच्छिवि'—पुत्र, बेटा आदि। भाषा-विज्ञान में ऐतिहासिक व्युत्पत्ति का महत्व कुछ कम नहीं है इस परिवेश में अनन्त शब्दों की सृष्टि हुई है। अँग्रेजी भाषा का 'बाइकाट' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। वैदिक युग की सभ्यता ग्राम-प्रधान एवं व्यापार में पशु-प्रधान रही है। 'वत्स' शब्द वैदिक भाषा में नव-जात गाय के बछड़े के लिए प्रयुक्त शब्द है, पर यही शब्द अर्थ विस्तार की दृष्टि से मानव नव-जात के लिए प्रयुक्त हुआ। उपनिषद्-युग में यह प्रिय बोधक शब्द के रूप में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार आगे भी इसका प्रयोग हुआ। इसी सन्दर्भ में दो वैदिक शब्द 'निचकी' और 'नेचिकी' वास्तव में 'अच्छी गाय' या 'वत्सरी' के लिए प्रयुक्त शब्द हैं। पर अर्थ-विस्तार की दृष्टि से पशु-प्रजाति के लिए प्रयुक्त शब्द क्रमिक—विकास से मानव-प्रजाति में प्रयुक्त हुए। इस दृष्टिकोण से कश्मीरी 'नेचुव' वैदिक 'निचकी' अथवा 'नेचिकी' से शतशः उद्भूत है। नैपाली भाषा में 'निचोर्नु' स्त्री के लिये है पर कश्मीरी में इस का प्रयोग 'कन्या' के लिये ही अधिक है। पर यदि कश्मीरी में कन्या विवाहिता भी हो, तो भी 'निअच्' का सम्बोधन होता है। इस स्त्रीवाचक शब्द से 'पुँवाची' शब्द की उत्पत्ति मध्य व्यंजन लोप से हुई है :—

निचकी स्त्रीलिंग निकी[२]-निक पुलिंग

कश्मीरी भाषा में सामाजिक अथवा पारिवारिक प्रसंग में किसी भी अपने से छोटे बच्चे को स्नेहवाचक रूप में 'गोंबुर' शब्द का प्रयोग अधिक प्रचलित है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार से सिद्ध होती है—गर्भ—उरसा=गभुरसा—गभुरस—गोंभुर—अर्थात गर्भ के वैध-सन्तान जैसा। हिन्दू-मुसलमानों में पुत्र के लिए अन्य एक और शब्द 'कंओ'ट' का प्रचुर प्रयोग है। इस शब्द का मूल रूप 'कूट-आप्रावरणे' धातु से स्पष्ट होता है। अर्थात् 'कूट' धातु वंश परम्परा की पूर्ति के निमित है। अभिधान राजेन्द्र कोष (पृ० २०२, भाग ३) इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार से करता है :—'वंशकटादो एवं सन्तरवंशमये'। इससे स्पष्ट होता है कि कश्मीरी 'कंओ'ट' वास्तव में वंश विस्तार परक शब्द है। एंगलो-सैक्सन

---

१. ऋग्वेद ८, ९३, २२।

२. पोगली विभाषा एवं पहाड़ी भाषाओं में भी इसका प्रचलन है।

भाषा में इसके समक्ष 'किड' अथवा 'किडी' उपयुक्त पर्याय है। जर्मन में भी इसका प्रयोग है। इस दृष्टि से यह भारोपीय शब्द है। कश्मीरी भाषा में इसका लिंग विचार इस प्रकार होता है—

कंओ'ट (पुलिंग) कअंट (स्त्रीलिंग)

इसके अतिरिक्त कश्मीरी भाषा में 'पअंतर—पअंथुर' का भी अतिशय प्रयोग है, जो वास्तव में 'पुत्र' का अपभ्रंश रूप है।

कश्म०—मअंज्ज, हिमाचल पहाड़ी—प्रयोग 'माजी'। कश्मीरी भाषा में मातृ या माता के लिए प्रयुक्त शब्द एकांकी न होकर दो शब्दों के युगल प्रयोग से बना है :—

मातृ+आर्या

भाषात्मक विकास की दृष्टि से आर्या अथवा आर्य शब्द पाली एवं प्राकृतों में 'अज्ज' हुआ है। कश्मीरी भाषा में भी यही विकास रहा है। इस विधा से 'मअज्ज' की व्युत्पत्ति इस प्रकार से हुई है :—

मातृ+आर्या→मातार्या→माताज्जा→मअंज्ज।

शिना भाषा—मा्[1] सम्बोधन—लाइ—मालाईं

कश्म०—प्यतु'र (चाचा) संस्कृ० पितृव्य। कश्मीरी में 'ऋ' उर के समान प्रयोग होता है और 'व्य' का लोप हुआ है।

कश्म०—'पेचंन्य' संस्कृ० 'पितृव्यपत्नी'। कश्मीरी भाषात्मक नियम में कुछ अपनी विशेषताएँ अवश्य रही है जिसके फलस्वरूप—'पत्नी' शब्द के प्रयोग के स्थान पर 'अनन्या' शब्द का प्रयोग हुआ है—

१—पितृव्य[2]+अनन्या→पितृव्यानन्या→पिचृव्यानन्या→पिचनन्या→पेचनन्या→पेचन्य (चाची)।

---

१. प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने शिना भाषा-भाषी भू-भाग के ३६ गाँवों का भाषा-सर्वेक्षण किया। जिनमें बगतोर घाटी कुवाका घाटी गुरेस घाटी एवं तिलेल घाटी विशेषतया उल्लेखनीय हैं। यह समस्त भू-भाग शिना भाषा-भाषी है। दुर्गम पर्वतीय भू-खण्डों में इनका निवास है। वाहन के नाम पर सिर्फ घोड़ा ही एक-मात्र साधन है।

२. कश्मीरी प्राकृत में तवग चवर्ग में परिवर्तित होता है। यथा—पितृ—पिच

३. कश्मीरी भाषा में 'मातुल' के 'त' अक्षर पर 'म' का परसवर्ण भारतीय आर्य भाषा के समान ही है।

२—मातुल+अनन्या→मातुलानन्या[3]→मामलानन्या→ मामनन्या →मामन्य (मामी)।

विशेष—

आयु के वर्गक्रम से—ज़िअंठ्—पेचन्य (बड़ी चाची) मंअ्ज़िम-पेचन्य (मँझली चाची) कून्स्-पेचन्य (छोटी चाची)

संस्कृ० ज्येष्ठा+पितृव्य+अनन्या, प्राकृत जेठा, हि०→जिठानी

संस्कृ० मध्यमा + पितृव्य+अनन्या, प्राकृत मज्ञ, हि० मँझली

संस्कृ० कनिष्ठा+पितृव्य+अनन्या, प्राकृत कनीठा हि० निठली

कश्म० पितुर-भोय (चचेरा भाई) संस्कृत-पितृव्य-पुत्र, गुजराती—पितराई, भाई। कश्मीरी भाषा में भी संस्कृत पितृव्य-पुत्र के स्थान पर, अन्य भारतीय आर्य भाषाओं के समान ही भ्रातृ शब्द का प्रयोग है और गुजराती और कश्मीरी में विशेष कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार पितुर बेन्य (चचेरी बहिन) गुजराती के 'पितराई बेन' के समान ही है। अन्य स्वरूप भी इस प्रकार से व्यवहृत होते हैं—

संस्कृत—पितृव्य-भ्रातृ—कुमारी ; कश्म०-पितर-बोय-कूर[1]

संस्कृत-पितृव्य-भ्रातृ-पुत्र, कश्म०-पितुर-मोय[2]-निचुव

विभक्त्यान्त रूप इस प्रकार से बनते हैं—

पितुर भोयसुंन्दं कूर। पितुर भोयसुन्द निचुव[3]

इसी क्रम में निम्न संबन्धु-स्वरूप स्पष्ट होते हैं

कश्म०—पफुतुर-भोय्, संस्कृ० पितृष्वसृ पुत्र्, गुजराती—फोश्यात-भाई, बंगाली—पिसतुवोगई, हिन्दी—पुफेरा भाई।

कश्म०—मासतुर-भोय, संस्कृत—मातृष्वृस-पुत्र, गुजराती–मसियाई भाई, महाराष्ट्री—मावस-भाऊ।

कश्म०—मामतुर-भोय, संस्कृत—मातुल-पुत्र, महाराष्ट्री–मामेभाऊ, बंगला—मामतो भाई।

---

१. संस्कृ० कुमारी, कश्म० कूरी— मध्य व्यंजन लोप। यह प्रथा कश्मीरी प्राकृत में बड़ी बलिष्ठ है। संस्कृ० कपाल, कश्म०, कल। काठिन्य, कश्म०, कन्य।

२. विभक्ति रहित प्रयोग।

३. शौरसेनी प्राकृत के विभक्ति प्रत्ययान्त।

कश्म०—बेन्य, संस्कृ०-भगिनी, गुजराती-वहेन या बेन, महाराष्ट्री-वहीण, सिन्धी—भंणु, पंजाबी-भैण-पेहण, बंगला-बोन ।

कश्मीरी भाषा में भगिनी—पति को "बेअंमं" कहते हैं । पर इसकी व्युत्पत्ति भगिनी—पति से न होकर "भगिनी—मान" से हुई है—भगिनी+मान→भगिनीमान→बनिमान→बेनिमा→बेअंमं ।

प्रा० हिन्दी—बन्यमा । सिन्धी—भेणीव्यो, गुजराती—बनेवी, बंगला—बोनाइ । पंजाबी—भणवीया, हिन्दी-बहनोई ।

कश्म०—"मासअं" संस्क० मातृष्वसृ, महाराष्ट्री→मावशी, गुजराती→माशी, बंगला→माशिम→माशिमा, पंजाबी→मासी ।

कश्म०—पोअंफ्, संस्कृ०-पितृष्वसृ, सिन्धी—पफी, गुजराती-फई, बंगला—पिसिमा-पिशिमा, पंजाबी-फूफी । हिन्दी-फूफी ।

कश्म०—"मासुवं" (मौसा) कश्म०-पफुवं (फूफा) क्रमशः संस्कृ०—मातृष्वसृपति पितृष्वसृपति । कश्मीरी भाषा में पति शब्द के स्थान पर "वर" शब्द का प्रयोग हुआ है यथा—

१—मातृस्वसृ+वर→मासुवं ।

२—पितृस्वसृ+वर→पफुवं ।

कश्म०—"कूर", संस्कृ०→कुमारी, कश्मीरी में मध्य व्यंजन लोप दीर्घ-स्वर के समेत हुआ है ।

कश्म०—जाम, लौकिक संस्कृत, ननान्दृ, वैदिक संस्कृत, जाम (दे० अथर्व वेद १, १७, १ तथा ऐ० ब्रा० ३।३७)

इस प्रकार का वैदिक प्रयोग एकांकी कश्मीरी भाषा में प्रचुर प्रयुक्त है ।

कश्म०—ज़ामतुर, संस्कृत→जामातृ, हिन्दी→जंमाई, पंजाबी→जवाई, महाराष्ट्री→ज़ावई, गुजराती→जमाई, बंगला→जामाइ । संस्कृ० "जामातृ" शब्द का 'ऋ' प्रायः कश्मीरी प्राकृत में अर-उर आदि में आदेशित होता है । संस्कृत व्याकरण के सन्धि प्रकरण में 'ऋ' का 'अर' आदेश होता है । पर कश्मीरी में 'उर' आदेश होता है । यथा : जामातृ→ऋ→उर→जामतुर । इसी क्रम से कश्मीरी में :—पअंफुतुर, मामतुर ; हिन्दी क्रमशः→पुफेरा, मुसेरा, चचेरा और ममेरा ।

कश्म०→"नअंश" संस्कृत→स्नुषा, महाराष्ट्री, सूनू, सिन्धी→नूंहं।
कश्मीरी भाषा में अग्रिम हलन्त "स्" का लोप होता है—
संस्कृत→स्फोरण, कश्म→फोरूण, संस्कत→स्फोट, कश्म०→फोट,
संस्कृत→स्फार कश्म०→फार। इसी नियम के अनुरूप संस्कृत
"स्नुषा" का अग्रिम हलन्त "स" लुप्त हुआ, अतः कश्म० रूप नुषा
न्वशा[1]→नअंश हुआ।

कश्म० द्रुय, संस्कृत→"देवृ" महाराष्ट्री→दीर, गुजराती→दियर,
सिन्धी→देरू, बंगला→देवर→भासुर। कश्मीरी प्राकृत में "द्रुय"
की व्युत्पत्ति स्पष्टतया "देवृ" से ही निश्चयेन हुई है। यथा—दे+
व+ऋ, द्रेव, द्रुव→द्रुय

कश्म०—भापथुर, संस्कृत—भातृ+पुत्र, कश्मीरी में पुत्र शब्द की
ध्वनि "पथुरं" भी होती है अतः भा+पथुर भापथुर, बंगाली→
भाइपो, संस्कृत भ्रातृ-पुत्र। हिन्दी→भतीजा।

कश्म०→'भावज़', संस्कृत→भ्रातृ-तनुजा, गुजराती→भत्तीजी,
बंगला,→भाइझि, हिन्दी→भतीजी। समस्त भारतीय आर्य भाषाओं
में इसकी रचना समान रही है।

कश्म०→वेन्थुंर, संस्कृत→भगिनी+पुत्र—भगिनीपुत्र—मेंपुथर→
बेंथु र।

वास्तव में इसकी उपज्ञा कश्मीरेतर भारतीय आर्य-भाषाओं में
भगिनी+अनुज से ही समीचीन ठहरती है, यथा—सिण्धी→भाणेज़ो
महाराष्ट्री→भाचा, गुजराती→भाणेज, हिन्दी→भानजा।

कश्म०—"भयकाकन्य", संस्कृ०→भ्रातृ—काकिणि। कश्मीरेतर
आर्य-माषाओं में "जाया" शब्द से इसका रूप स्थिर हुआ है। परं
कश्मीर एक शाक्त-प्रधान देश होने के कारण "भ्रातृजाया" का
'काकिणि' अर्थात 'पूज्या', 'आराध्या' आदि से व्यवहृत किया है।
रुद्रयामल तंत्र में "काकिणि-अमृत जीवनी" का प्रयोग हुआ है।

---

१. कश्मीरी में 'व' और 'उ' की स्थिति अस्थिर एवं स्वतः विपर्ययशील है और 'उ', प्रायः 'व', में परिणत होता है। जैसे उमा→वमा, उग्र→वग्र, उस्ताद वस्ताद।

२. 'व' पर 'य' का आदेश।

कश्म० →ह्युहुर, संस्कृ० →श्वशुर[1] →हुहुर →ह्यु हुर

कश्म० →हश्, संस्कृ० →श्वश्रू →हुवशू →हुवश (श्र) →हअश ।

कश्म० →व्यसु, संस्कृ०—व्ययस्यी—कश्म०—व्यसु

कश्म०—माल्युन । संस्कृ० मातृगृह । कश्मीरी—माल्युन की व्युत्पत्ति मातृगृह से न होकर—मातृ+अयनम्[2] से हुई है । 'रलयो अभेदः' तृ के ऋ का 'ल' एवं त का लोप :—मालयनम्—माल्यनम्—माल्युन । हिन्दी—मैका । महाराष्ट्री—माहेर ।

कश्म०—वअंरिव (बहू का ससुराल) । संस्कृत—वरकुल । व्युत्पत्ति —वर+आलय—वरालय[3]—वराय—बअंरिय[4]—वअंरिव, वैदिक →वर +इवातः

यह परम्परा संस्कृत भाषा के अनुकूल ही है क्योंकि हिन्दी में ससुराल वधू और वर दोनों के घर के लिए प्रयुक्त है पर संस्कृत में वरकुल एवं श्वशुरगृह भिन्नार्थक रूप में प्रयुक्त होते हैं । शिना—वरु कुलं

कश्म०— होवुर (पति का ससुराल) संस्कृ०—श्वशुरगृह (व्युत्पत्तिः—श्वशुर—हुवउर—होवर—होवुर । हिन्दी—ससुराल।) सिन्धी—साहुरा । महाराष्ट्री—सासर । गुजराती—सासक ।

बंगाली—श्वसुरवाड़ि । असमीया—शहुरेर—घर । बंगला और असमीया से मिलता कश्मीरी शब्द है 'होवुर—घर' ।

कश्म०—'साल' । संस्कृ०—शाली । कश्मीरी प्राकृत में यदाकदा भारतीय आर्य भाषाओं के समान ही 'श' 'स' में परिणत होता है । शाला —साल

कश्म०—साल । हिन्दी—साली । सिन्धी—साली । गुजराती—साली । बंगला—शालि ।

कश्म०—साजुव । संस्कृ०—शाली-पति । व्युत्पत्ति :—शाली→

---

१. कश्मीरी प्राकृत में श या ष प्रायः 'ह' में विपर्य होता है :— शरत्— हरुद्, शाक —हाक, श्वान—हून, शत—हथ ।

२. ऋग्वेद ३,३३,७ आयन्नापो यनमिच्छमाना' । ऋग्वेद में 'अयन' शब्द घर के प्रति ही है ।

३. मध्य लकार का लोप । कश्मीरी प्राकृत में मध्य व्यंजन लोप अत्यधिक होता है :—तुषार→तूर । कपाल→कल । कठिन→कन्यं

४. यकार का विपर्यय 'व' में हुआ है ।

धवः→शालीधवः→सालीधव→साजेधव[1]→सजीवः[2]→साजव । हिन्दी साढ़ू । पंजाबी—साढ़ू । सिन्धी—संढू । गुजराती—साढु । महाराष्ट्री—साडू । ओडिया—साड़ू ।

कश्म०—हर्हर । संस्कृ०—शाला । कश्मीरी प्राकृत में प्रायः श हकार में परिणत होता है । शाला—हाला, रलयोः अभेदः इस भारोपीय[3] नियम के अधीन लकार 'र' में परिणत होता है :—हारा । 'ह' की 'आ' ध्वनि हकर के संयोग से विसर्गवत प्रयुक्त हुई है अतः—हःर । विसर्ग ओर उष्म में ध्वन्यात्मक ऐक्य के कारण—हर्हर । हिन्दी—साला ।

कश्म०—हअश[4] । संस्कृत—श्वश्रू । श्वशू—हुवंशू—हअंशू—हअंश —हश ।

शेष भारतीय भाषाओं में श्वश्रू के दोनों ही शकारों का सकार होता है । हिन्दी—सास । गुजराती—सासु । महाराष्ट्री—सासू । सिन्धी—ससु असमीया—हाहु (कश्मीरी के समान ही श का ह) बंगला साहुडी ।

कश्म०—स्वंन । संस्कृत—सपत्नी । कश्मीरी प्राकृत में प्रायः 'प[5]' 'व' में विपर्यय होता है । सपत्नी→स्वत्नी→स्वन्न→स्वन । महाराष्ट्री में भी प का व विपर्यय होता है :—संस्कृत—सपत्नी महाराष्ट्री→सवत । हिन्दी→सौत । पंजावी→सौत । गुजराती→सौती । बंगला→सातिन । असमीया—सतिनि । तेलगु—सवनि । कन्नड—सवति ।

कश्म०—'वोरंभोय' । संस्कृ०—सापत्नभ्रातृ । कश्मीरी में इस शब्द की उत्पत्ति इस प्रकार से सम्पन्न हुई है :—औरस+भ्रातृ अथवा उरसा +भ्रातृ । उरसा→भ्रातृ—वरसा[6]+भ्रातृ—वोरभोय→वोरंभोय

---

१. कश्मीरी प्राकृत में 'ल' सामान्यतया 'ज' में परिणत होता है :—संस्कृत—तूलिका का कश्म० तुज । संस्कृ०—वलय, कश्म०—वअंज ।

२. 'ध' का लोप ।

३. भारोपीय समस्त भाषाओं में 'रलयो, ढलया, ढरलअभेदः' । 'भाषा विज्ञान पर भाषण' मैक्समूलर ।

४. कश्मीरी प्राकृत के समान ही दसवीं शती के प्राकृत ग्रन्थों में 'श' हकार में विपर्यय होता है । संस्कृ०→दशविध, प्राकृत→दह+विद्या 'कुमारताल चरित'

५. कश्मीरी प्राकृत में पकार का विपर्यय व में होता है यथा :—संस्कृ०—पक्ष कश्म०—वथ, संस्कृ०—पानी कश्म०—वोन्यं ।

६. कश्मीरी में उ स्वर प्रायः व होता है:—ओम→वोम । उष्ण→वुषुण । उग्र वुमर । आधुनिक भाषा-विज्ञान में व की ध्वन्यात्मक स्थिति अर्ध-स्वर के समान ही है ।

कश्म०—उरसा—भगिनी। यह संबन्ध वाचक भी उक्त नियम के आधार पर ही सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त और दो संबन्धु: वाचक भी इसी नियम के अधीनस्थ स्पष्ट होते हैं यथा :—

औरसा+मातृ एवं औरसा+पितृ।

कश्म०—वोरुबोय। हिन्दी—सौतेला भाई। पंजाबी—मतरेयाभ्रा या 'प्रा'। सिन्धी→मोटेलो माऊ। गुजराती→सावको भाई। महाराष्ट्री→सावत्र भाऊ।

कश्म०—वोरभेन्यि। हिन्दी→सौतेली बहन। पंजाबी→मतरेई भैण। बंगला→शॉत बोन्, गुजराती—सावकी बहेन। महाराष्ट्री—सावत्र बहीण।

कश्म०—वोर माज। हिन्दी—सौतेली[1]—मां। सिन्धी—मोटेली माउ। बंगला—शात मा, महाराष्ट्री—सावत्र आई। गुजराती—सावकी मा।

कश्म०—'वोर[2] मोल' (सौतेला पिता) यह शब्द सामान्यतया संस्कृत एवं भारतीय भाषाओं में कम ही उपलब्ध होता है पर कश्मीर में इसकी स्थिति है। इसके अतिरिक्त यदि विधवा स्त्री पुनः विवाह करे उसे कश्मीरी भाषा में 'वरूज़' कहते हैं। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार से हुई है :—औरस+जाया,→वरस+जा→वरूज़।

कश्म०—सोन्य्। संस्कृत—जामातृ+पितृ अथवा स्नुष+पितृ। संस्कृत के इस शब्द-गठन से ऐसा अनुमान होता है कि संस्कृत में यह शब्द अति प्राचीन नहीं है और कहीं भी इसका प्रयोग संस्कृत साहित्य में नहीं हुआ है। महाकवि भास ने 'समधी' शब्द के लिए 'सबन्धी[3]' का प्रयोग बहुधा किया है। अतः कश्मीरी भाषा में भी इसी शब्द की मूल भित्ति स्वीकार करनी चाहिए :—सम्बन्ध—प्रथमतः[4] मध्य व्यजन का लोप सन्ध

---

१. हिन्दी का यह संबन्ध वाचक संस्कृत स्व+इतर—मातृ से उद्भूत है।

२. इस शब्द से कश्मीर के अतीत समाजशास्त्र पर भी प्रकाश पड़ता है कि चिरंतन युग में विधवा-विवाह एवं वि-पिता की स्थिति समाज में थी। इस में मुसलमानी संस्कृति का किंचित भी प्रभाव नहीं क्योंकि मौलिकतया शब्द संस्कृत है।

३. भासकृतम्—स्वप्नवासवदत्ता, पन्चरात्र प्रतिमानाटक आदि।

४. मध्य व्यन्जन लोप—कश्मीरी प्राकृत की मुख्य विशेषता है :—
तुषार→तूर, कपाल→कल, कुमारी→कूर आदि।

—सन—सोन्य । हिन्दी समधी । ओडिया—समुँधि । तामिल—संबंदि । सिन्धी—सेणु । कश्मीरी में इसका स्त्रीलिंग :—सोन्य—बाइ० संस्कृ०—सम्बन्धी भार्या ।

कश्म०—नान्य । संस्कृत→पितामही एवं मातामही । कश्मीरी में पितामही एवं मातामही के लिए एक ही शब्द है । विशेष स्पष्टि करने के लिए कभी-कभी कश्मीरी में मातामालांच्—नान्य (नानिहाल की नानी) और गर्अरिच्-नान्य (घर की दादी)

कश्म०—'मातामाल', हि०→ननसार । मातामह+आलयम्→मातामहालयम्→मातामालयम्—मातामाल । नानी एवं दादी मूलतः एक ही है पर कहीं द कहीं न—का वर्ण विपर्यय हुआ है । कश्मीरी भाषा में दादा एवं नाना के लिए भी एक ही शब्द का प्रयोग है ।

कश्म०—बुडय—बंबु । हि० दादा, वास्तव में यह दो शब्दों के संयोग से वना है :—

संस्कृत—वृद्ध । हिन्दी→बूढा । कश्म०→बुड+बब् । बब् अथवा हिन्दी बाबा वास्तव में एक ही शब्द है । इस शब्द के बारे में श्री मैक्स-मूलर[1] का कथन है कि यह बाबा शब्द तुर्की भाषा का है पर पाणिनि से तीन चार शतक पूर्व व्याकरणकार काशकृत्स्न ने 'अब्ब जनने' धातु से इसकी स्पष्टि की है । 'अब्बयति—जनयति ।

अब्ब :—पिता, अब्बा माता' इसी से हिन्दी का बाबा एवं कश्मीरी का बब् उद्भूत हुआ है । अतः मैक्समूलर की यह मान्यता भ्रमात्मक ही है। दूसरी यह भी बात है कि उन्होंने काशकृत्स्न व्याकरण को देखा नहीं है क्योंकि कहीं भी इसका उल्लेख उन्होंने नहीं दिया है । इस प्रकार से कश्म०—'बुडय् बंब' दादा या नाना 'वृद्ध+अब्बः' का तद्भव रूप है । भारतीय कर्मकाण्ड पद्धति में भी नामोच्चारण के समय 'वृद्ध' शब्द का 'वृद्ध—प्रपितामह' में प्रयुक्त होता है । यह एक समाज-शास्त्रीय प्रश्न है कि चौथी पीढ़ी का शब्द तीसरी पीढ़ी पर क्यों प्रयुक्त हुआ । वास्तविकता यह है कि कश्मीरी में सामान्य प्रयुक्त शब्द बडअं—बुडय् बब है । सम्भवतः सरलीकरण की दृष्टि से पितामह और मातामह के लिए किया हो । इसी

---

१. भाषा विज्ञान पर भाषण—भाग दूसरा, श्री मैक्समूलर ।

नियमानुसार प्रपितामही अथवा प्रमातामही के लिए—बअंड—नान्य है।
इसके अतिरिक्त भाषा में संस्कृत प्रधान ही है :—

प्रपौत्र—पर-पुत्तुर, प्रपौत्री—पर-पुतुर

मैं अन्त में, पुनः इस बात का स्मरण दिलाना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि कश्मीरी भाषा के संबन्धु: वाचक शब्द इस बात के सशक्त प्रमाण है, कि प्रत्येक पारिवारिक संबन्ध शब्द मौलिकतया वैदिक-संस्कृत और प्राकृत से उद्भूत है। यद्यपि कहीं कहीं शैली और रूढ़ि में विभेद भी है पर जननी सबों की एक ही छान्दस—संस्कृत है। एक 'ज़ाम' शब्द (ननद) इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि इस भाषा में वैदिक महासागर की एक अविभाज्य बूंद है जिसे कई तथाकथित विद्वान हिब्रो भाषा से उद्भूत मानते हैं।

अन्त में, मैं रूस के समाजशास्त्री श्री लिनटाबो के इन शब्दों को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता हूँ—'परिवार अपने में एक ऐसी इकाई है जो विभक्त होने के उपरान्त भी अविभाज्य रहती है और इसकी भाषा और सम्बन्धु: वाचक नाम भाषा की चिरन्तन थाती है जो विप्लव के उपरान्त भी जीवित रहने की क्षमता रखते हैं।'

० ० ० ० ० ०

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

—श्रीमद्भगवतगीता–२।३७

(यदि तू युद्ध में मारा गया तो तू स्वर्ग पहुँचेगा; यदि तू विजयी हुआ तो तू पृथ्वी का उपभोग करेगा। इसलिए हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन, तेरा नाम परंतप भी है), तू लड़ने का निश्चय करके उठ खड़ा हो)

● ● ●

जानवर, आदमी, फरिश्ता, ख़ुदा।।
आदमी की हैं सैंकड़ों किस्में।

—हाली

शामा सेठी भू० पू० कोषाध्यक्ष,
हिन्दी परिषद्

आह

अरमानों के ज़ख़्म भरने के लिए,
यादों के—
उजड़े शहर, फिर बसाने के लिए,
दिल के धुँआधार वीराने में
ख़यालों के तूफ़ान उठते हैं।
तमन्नाओं की मोजों में
ग़म के भँवर—
खुशियों को लपेट कर
ले डूबते हैं।
हँसी को झिलमिलाती चादर में
ग़म के हज़ारों
गन्दे पैबन्द लगते हैं—
तब कहीं जाकर
एक आह निकलती है।

o o o o o o

डा० भूषणलाल कौल
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

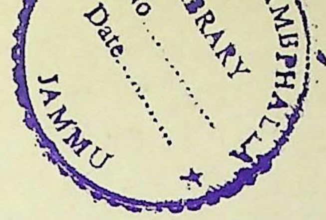
कश्मीरी भाषा की दो उल्लेखनीय काव्य-प्रवृत्तियाँ

(अ) लीला एवं भक्ति काव्य :

कश्मीरी साहित्य में लीला एवं भक्ति काव्य की प्रधानता रही है। इस काव्य में धार्मिक उद्‌गार प्रकट किए गए हैं। शिव, राम, कृष्ण एवं मुहम्मद से सम्बन्धित अनेक भक्तिपरक रचनाएँ लिखी गई हैं। जहाँ एक ओर शिव, पार्वती, राम और कृष्ण के भजन, कीर्तन और चरित गाये गये, वहाँ दूसरी ओर हज़रत मुहम्मद की शान में नातें कही गयीं। लीला-काव्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण सृष्टि को शिव या कृष्ण की लीला माना गया है। कृष्ण ने ही अपनी अद्‌भुत छटा को चारों ओर फैला दिया है। इस सृष्टि का निर्माण उसके कर कमलों द्वारा हुआ है। यह उनकी परम इच्छा थी, यही उनकी लीला है। अतः इन रचनाओं में कृष्ण एवं शिव की महिमा का गुणगान किया गया है।[१] भक्त अपने निश्चल हृदयोद्‌गारों को कृष्ण के प्रति अर्पित करता है। यही उसकी अर्चना के कुसुम हैं। वह विनीत एवं दास्यभाव में कहीं सगुण, तो कहीं निर्गुण ब्रह्म की लीला गाता है। इस काव्यधारा का जन्म १८वीं शताब्दी में माना जाता है। १९ वीं शताब्दी में धार्मिक काव्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया और २०वीं शताब्दी में प्रथम तीन चरणों तक इस प्रकार की कविताएँ प्रमुख रूप से लिखी जाती रहीं। श्री साहब कौल ने सर्वप्रथम श्री कृष्ण के विषय में कुछ लीलाएँ लिखीं

---

१. 'कश्मीरी लायरिक्स'—सलैक्टेड एण्ड ट्रांसलेटेड बाई श्री जे०एल० कौल पृ० १८।



और इसके पश्चात् प्रकाशराम की 'कृष्ण अवतार लीला' इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। श्री अली जवाद ज़ैदी ने लिखा है कि प्रकाशराम लीला आन्दोलन के जन्मदाता हैं। उन्होंने ही कश्मीर में भक्ति का आन्दोलन चलाया, जिसको आगे परमानन्द और उनके साथियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया।[1] प्रकाशराम का 'रामावतार चरित' उस युग की सफल कृति समझी जाती है। इस ग्रन्थ में बहुत ही सुन्दर लीलाएँ एवं भक्तिपरक भजन राम के विषय में लिखे गये हैं।

१९वीं शताब्दी में लीला एवं भक्ति काव्य में नवीन प्राण फूँकने वालों में परमानन्द का नाम चिरस्मरणीय है। अनेक सुन्दर गीत एवं लीलाओं के अतिरिक्त उन्होंने 'सुदामा चरित', 'राधास्वयंवर' एवं 'शिवलगन' नामक वर्णनात्मक कविताएँ भी लिखी हैं, जिनमें भक्ति की प्रधानता है। इन तीन काव्य-कृतियों के विषय में मास्टर जिन्दा कौल ने लिखा है कि "क्रमानुसार इन तीनों काव्य-कृतियों का सार है—सुदामा और कृष्ण का परस्पर प्रेम अर्थात् जीव और परमात्मा का परस्पर प्रेम, राधा एवं श्री कृष्ण का प्रेम, और शिव और उमा का पुनर्मिलन। ये तीनों कृतियाँ आत्मा-परमात्मा के परस्पर असीम प्रेम की प्रतीक हैं। ईश्वर की इस लीला को देखकर कवि अपना सर्वस्व उस पर निछावर करता है और भक्त के रूप में उसकी आराधना करता है। उन्होंने विशेषकर राधा और कृष्ण के प्रति अपने हृदयोद्‌गारों को वाणी प्रदान की है। यही कारण है कि उनके काव्य को प्रमुखतः लीला के अन्तर्गत लिया जाता है।[2]

स्वामी परमानन्द श्रीकृष्ण के सच्चे भक्त थे। कृष्ण की लीलाएँ गाते-गाते वे प्रायः मस्त हो जाते थे। आँखों में अश्रुओं की झड़ी लगती थी और कभी-कभी स्वयं भी नाचने लगते थे।[3] प्रो० श्रीकण्ठ तोशखानी ने

---

१. 'कश्मीरी भाषा एवं काव्य', भाग-२, आज़ाद—दो-शब्द (प्रस्तावना)

२. 'कश्मीर', फरवरी १९५८—'परमानन्द'—मास्टरजी, पृ० २९।

३. (i) 'कश्मीर', मार्च १९५८, पृ०-५३।

(ii) इट इज़ सेड दैट वयन ही रिसाइटिड दिस लीला इन हिज़ मियूज़िकल वायस एण्ड टू दि एकम्पनीमैंट आफ दि मधाम विच ही पलेड़ कान्सटे-न्टली एण्ड फेयरली वेल् एव्री फेबर आफ हिज़ हार्ट थ्रिल्ड़—ही वेप्ट एण्ड सेन्ग एण्ड डान्सड़ इन एक्सटीसी।

—'कश्मीर'—फरवरी १९५८—'परमानन्द'—मास्टर जी, पृ० २९।

लिखा है कि उनकी लीलाएँ जनता में बहुत लोकप्रिय हुईं अरआज भी बड़े चाव से उन्हें गाया जाता है। धार्मिक एवं साहित्यिक गोष्ठियों में उनका पाठ किया जाता है।[1]

परमानन्द के पश्चात् कृष्ण जू राज़दान का नाम लीला एवं भक्ति काव्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध है। राज़दान साहब ने शिव और कृष्ण की समान रूप से उपासना की है। प्रो० जियालाल कौल के अनुसार उनकी लीलाओं में रहस्य तत्त्व एवं दार्शनिकता अपेक्षाकृत कम है। ये लीलाएँ माधुर्य गुण से ओत-प्रोत हैं।[2] उन्होंने ३४७ भजन एवं लीलाएँ लिखी हैं। 'शिवप्रणय' एवं 'शिवलगन' उनकी दो वर्णनात्मक काव्य-कृतियाँ हैं, जिनमें अनेक भक्ति-परक गीत भी मिलते हैं। उनकी कृष्ण-लीलाओं में कृष्ण की बाल्यावस्था से लेकर राज्य प्राप्ति तक के सुन्दर चित्र मिलते हैं। उनके जीवन के विभिन्न पक्षों का उन्होने बड़ी गहराई से चित्रण किया है।[3]

श्रीराम के प्रति भी राज़दान साहब ने सुन्दर भजन गाए हैं। राम के प्रति उनकी भक्ति दास्य भाव की है, जबकि कृष्ण के प्रति सख्य भाव की जैसे "आप भक्तों के भक्ति भाव पर रीझ जाते हैं। हे राम ! मैं आपके राम नाम पर बलिहारी हो जाऊँ।"[4] (दे० परि० (१) क्रम १)

स्वामी परमानन्द की शिष्य परम्परा में स्वर्गीय लक्ष्मण जू राज़दान (बुलबुल नागामी) एक प्रसिद्ध भक्त-कवि हुए हैं। लक्ष्मण जू परमानन्द के प्रिय शिष्य थे और उनके सम्पर्क में आकर उन्होंने अनेक भक्तिपरक रचनाएँ लिखी हैं।

यहाँ के मुसलमान कवियों के धार्मिक साहित्य (भक्ति-साहित्य) पर प्रकाश डालना इस प्रसंग में असंगत न होगा। इन कवियों की भक्ति परक रचनाएँ प्रमुखतः 'नातों' के रूप में प्राप्त होती हैं। १९वीं शताब्दी में श्री कुतुबउद्दीन वाइज़ ने इस प्रकार की सुन्दर रचनाएँ लिखी हैं।

१९वीं शताब्दी में ही श्री अब्दुल अहद नादिम ने भक्ति-रस से ओत-

---

१. 'परमानन्द' कलचरल अकादमी—दो शब्द, प्रो० तोशखानी, पृ० ११।
२. 'कश्मीर'-अक्तूबर, १९५६—'माडर्न पीरियड आफ कश्मीरी लिटरेचर'—जे० एल० कौल, पृ० २३०।
३. 'कश्मीर'—दिसम्बर, १९५८—कृष्ण जू राज़दान—बी०एल० कौल पृ० २९९।
४. मार्ग-दर्शक-अगस्त १९६२, पृ०-५३।

प्रोत सुन्दर रचनाएँ लिखी हैं। वे एक प्रसिद्ध सूफी सन्त थे। हज़रत नबी के प्रति उन्होंने करुण एवं विनीत शब्दों में अपने भाव प्रकट किये हैं। "हज़रत नब्बी के नाम पर हम बलिदान हो जाए, वायु के द्वारा मैं अपना सन्देश उन तक पहुँचाऊँगी। मैं अपना दुखड़ा उन्हें सुनाऊँगी। मैं आँसुओं के ऊष्ण-जल से उनके पाँव धो लूँगी। दोनों आँखें उन पर निछावर करूँगी। मैं अपने शुष्क होठों से उनके पाँव पूँछ लूँगी।"[1]

(दे० परि० (१) क्र० २)

इसी युग में मकबूलशाह क्रालवारी ने भी बहुत ही सुन्दर नातें लिखी हैं। तत्कालीन विकट परिस्थितियों से निराश होकर कवि महोदय मुहम्मद की शरण में जाता है। जीवन की अनेक असंगतियों ने उसे पीड़ित कर दिया था। उसका दृढ़ विश्वास है कि तमसान्धकार में हमारे लिए मुहम्मद ही प्रकाश की एक किरण है।[2]

पण्डित नन्दराम ने मुहम्मद की शान में एक सुन्दर नात लिखी है, जिसका उल्लेख 'आज़ाद' ने अपने इतिहास में किया है। उन्हें दयासागर मुहम्मद पर अडिग विश्वास है। "आज मेरे सब रोगों की दवा कर दो, ताकि मैं रोग मुक्त हो जाऊँ। ओ मेरे प्यारे मुहम्मद ! मैं तुम्हारे दरबार में बड़ी आशाएँ लेकर आया हूँ। मुझे निराश न होने देना। मेरे प्रेम से परिपूर्ण हृदय की पुकार सुन। मेरे मुहम्मद ! मुझ पर दया करो।[3]

(दे० परि० (१) क्र० ३)

कविवर 'महजूर' ने भी ईश्वर के प्रति अपने अडिग विश्वास को कई कविताओं में व्यक्त किया है। ये कविताएँ उन्होंने जीवन के अन्तिम वर्षों में लिखी हैं। इन कविताओं में 'महजूर' साहब का समन्वयवादी दृष्टिकोण, जोकि धार्मिक संकीर्णता से बहुत दूर है……प्रकट हुआ है। ईश्वर की चरणवन्दना करते समय उन्होंने लिखा है कि "हे मेरे मालिक ! मुझे केवल तुम्हारी आशा है। मुझे सन्मार्ग पर चलना सिखा दो। अब मैं और कितने समय तक अज्ञान में भटकता रहूँ। ज्ञान का प्रकाश मेरे

---

१. 'कश्मीरी भाषा एवं काव्य' (भाग-२)।
आज़ाद, पृ० ३५३।
२. 'कश्मीरी भाषा एवं काव्य' (भाग-२) पृ०-७० ७१।
३. वही, पृ० ४५७।

जीवन के अन्धकार को मिटा देगा। मेरी विनती को इसी प्रकार तनिक सुनो और मुझे रोग-मुक्त कर दो। मुझ पर सदा तुम्हारी दया दृष्टि बनी रहे और कभी मैं निराश न होने पाऊँ। मेरा रूपाकार मनुष्य के समान है परन्तु मनुष्यता मुझ से कोसों दूर है। मुझे मानवता का पाठ पढ़ाओ। अब मुझे और परीक्षा में मत डालो।"[१] (दे० परि (१) क्र० ४)

ईश्वर-विरह में जीवात्मा का क्रन्दन भी देखने योग्य है। "मैं अपना जीवन उस पथ पर बलिदान कर दूंगा, जो पथ मुझे तुम्हारे यहाँ पहुँचा देगा। तुम्हारी जुदाई ने मेरी सहन-शक्ति को नष्ट कर दिया है। क्या करूँ, मुझे तुम्हारे प्रेम ने उन्मत्त बना दिया है। यदि मुझे कहीं तुम्हारा पता मिलता, तो मैं पागलों के समान दौड़ता हुआ वहाँ तक पहुँच जाता। मार्ग में तुम्हें ढूंढ लेता या वहाँ तुम्हारी प्रतिक्षा करता।"[२]

(दे० परि (१) क्र० ५)

इस प्रकार लीला एवं भक्ति-काव्य के क्षेत्र में यहाँ के कवियों का योगदान प्रशंसनीय रहा है। इस काव्य-प्रवृत्ति ने यहाँ के हिन्दू एवं मुसलमान कवियों को समान रूप से प्रभावित किया है।

(आ) चरित-काव्य :

कश्मीरी साहित्य में चरित काव्यों की एक स्वस्थ परम्परा मिलती है। यह काव्य अपनी मौलिकता एवं घटना-वैचित्र्य के कारण हृदयाकर्षक है। लौकिक एवं पौराणिक महापुरूषों से सम्बन्धित अनेक चरितकाव्य लिखे गये हैं। अधिकांश कवियों ने 'राम-चरित' लिखे फलतः रामायण-काव्य की अमूल्य कृतियाँ आज इस भाषा में उपलब्ध हैं। यहाँ के राम-भक्त कवियों ने निराकार राम की उपासना नहीं की अपितु दशरथ सुत अयोध्या के राजकुमार की जीवन-लीला का सगुणोपासक के रूप में वर्णन किया।

सुलतान जैनुलाबदीन 'बड़शाह' का शासनकाल १४२० ई० से १४७० ई० तक कश्मीर के इतिहास का स्वर्ण-युग माना जाता है। उनके राज्यकाल में यहाँ की हिन्दू एवं मुसलमान जनता को समानाधिकार प्राप्त हुए। वे एक प्रजा-रक्षक राजा थे तथा स्वयं धार्मिक सहिष्णुता के प्रतीक थे।

---

१. 'सलामे महजूर', पृ० १-२।
२. वही, पृ० ४।

मुगल राजाओं में जो स्थान अकबर का है, वही कश्मीर के सुलतानों में जैनुलाबद्दीन का है। जनता प्रेमवश उन्हें 'बड़शाह' अर्थात् बड़ा राजा कह कर पुकारती थी। उनके राज्यकाल में प्रदेश ने हर क्षेत्र में उन्नति की— विशेषकर कला एवं साहित्य के क्षेत्र में। संस्कृत, फारसी तथा देशी भाषा के अनेक विद्वान्, कवि एवं कलाकार उनके दरबारी रत्न थे। सोम पण्डित उनके दरबार के एक प्रसिद्ध विद्वान् थे, जिन्होंने सम्राट् के जीवन पर आधारित 'जैन चरित' नामक चरित-काव्य की रचना की है। इस ग्रन्थ का नायक स्वयं बड़शाह है, जिसकी जीवन गाथा को महापण्डित ने बड़ी विद्वत्ता से शब्दबद्ध किया है। इस कृति में सम्राट् के अद्भुत राज्य कौशल, विलक्षण बुद्धि, गुण-ग्राहक शक्ति विद्या-प्रेम एवं रसिता का विशद् वर्णन हुआ है।

१८वीं शताब्दी में पण्डित प्रकाश राम ने 'रामावतार चरित' काव्य की रचना की। पण्डित प्रकाशराम, जो दिवाकर प्रकाश के नाम से भी प्रसिद्ध हैं कुर्यगाम के निवासी थे। राजा सुखजीवन (सन् १७५४-६२) के राज्यकाल में प्रकाशराम ने इस चरित-काव्य को लिखा है।[१] जनश्रुति है कि प्रकाश भट्ट नेत्रहीन थे और इस चरित-काव्य के लिखने के पश्चात् ही उन्हें नेत्र सुख प्राप्त हुआ।

यद्यपि ग्रन्थ का मुख्याधार वाल्मीकि रामायण है तथापि इसमें अनेक नवीन प्रसंगों की उद्भावना की गयी है। कथा में भी कहीं-कहीं मौलिक अंश जोड़ दिए गए हैं। इसमें सीता को मन्दोदरी की पुत्री बताया गया है।[२] सारे काव्य में करूण रस की प्रधानता है। पण्डित प्रकाशराम फारसी के अच्छे विद्वान् थे यही कारण है कि उनके काव्य में यत्र-तत्र फारसी मिश्रित कश्मीरी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है।

श्री पृथ्वीनाथ 'पुष्प' ने लिखा है कि "विषय और भाषा के लिहाज़ से यह कश्मीरी की मौलिक रचनाओं में से है। भाषा वर्णनानुकूल और संतुलित है तथा मनोवेगों का चित्रण बहुत स्वाभाविक और प्रभावशाली है। जंगों के अतिरिक्त शेष सभी प्रसंगों में देशकाल की उद्भावना खूब हुई है। वेदना को जाग्रत करने में कवि को विशेष सफलता मिली है।

---

१. इस विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं।

२. 'कश्मीर देश व संस्कृति'—शिवदानसिंह चौहान, पृ० १४५।

काव्य के परिशिष्ट 'लवकुश-चरित' में सीता का करुण निवेदन तो कश्मीरी साहित्य में बिल्कुल निराली ही चीज है।[1] युद्ध-प्रसंगों पर फरसी 'रज़मिया-काव्य' का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस ग्रन्थ में प्रकृति-चित्रण भी सजीव एवं चित्ताकर्षक है। कश्मीर के वन-पर्वतों, जल-प्रपातों, झीलों, घाटियों एवं रम्य स्थलों को कवि ने अपने काव्य में बड़ी कलात्मकता से चित्रित किया है।[2]

२०वीं शताब्दी में पण्डित नीलकण्ठ शर्मा ने श्रीराम के जीवन से सम्बन्धित दो ग्रन्थ लिखे—'रामायणि-शर्मा' एवं 'रामचरित' (रामचंयर्थ। 'रामायणि शर्मा' पर फारसी भाषा का गहरा प्रभाव है। 'रामचंयर्थ' पर वाल्मीकि एवं तुलसी कृत रामायण का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। कवि महोदय की महान् रचना शक्ति का परिचय हमें इस कृति से मिलता है। कृति अप्रकाशित है परन्तु उसकी पाण्डुलिपि स्वयं लेखक के पास सुरक्षित है। इसी प्रकार पण्डित विष्णु कौल व्यास (अनन्तनाग तहसील) गाँव के निवासी थे। उन्होंने भी एक 'रानचंयर्थ' लिखा है।

चरित-काव्य की परम्परा में स्वामी परमानन्द का 'सुदामा-चरित' अपने युग की एक सफल कृति समझी जाती है। सुदामा और श्रीकृष्ण की मैत्री के विषय में कई कथाएँ प्रचलित हैं। सुदामा-एक अकिंचन बालक की मैत्री बालगोपाल कृष्ण से थी। वे कृष्ण के घनिष्ठ मित्र थे। सुदामा को अभिमान हुआ और परिणाम स्वरूप उनकी मैत्री में बाधा उपस्थित हुई। कृष्ण से अलग होने पर उसे अनेकों संकटों का सामना करना पड़ता है। दरिद्रता के कारण वह हताश हुआ। इन्हीं दिनों कृष्ण को राज्य प्राप्त होता है और सुदामा पुनः उसकी शरण में जाता है। इस कृति में स्वामीजी ने अपने दार्शनिक दृष्टिकोण को भी अभिव्यक्त किया है। सुदामा जीव का प्रतीक है, जो सांसारिक सुख-वैभव के अभिमान के कारण उस परमसुख से वंचित हो जाता है। अंततः जब जीव को वास्तविकता का ज्ञान होता है, तो वह परमशक्ति से पुनर्मिलन से लिए व्याकुल हो उठता है और अनेक कठिनाइयों के पश्चात् बिन्दु पुनः सिन्धु में विलीन हो जाता है। स्वामी जी ने सुदामा के जीवन का सर्वांगीण चित्रण किया है। आरम्भ से लेकर अन्त

---

१. 'कश्मीरी भाषा और साहित्य'—'पुष्प', पृ० १७।
२. 'ए हिस्ट्री आफ कश्मीर'—पी० एन० के० बमजई, पृ० ७३६।

तक उनकी जीवन-कथा इस कृति में वर्णित है। सुदामा की जीवन-कथा के साथ-साथ श्री कृष्ण के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन भी इस कृति में मिलता है।

कश्मीर प्रदेश में 'अकनन्दुन' की लोककथा बहुत ही लोकप्रिय है। इस लोककथा के आधार पर अनेक कवियों ने दुख-सुखात्मक चरित-काव्य 'अकनन्दुन' का सृजन किया है। श्री 'पुष्प' ने लिखा है कि 'एक और विषय जिस पर आधा दर्जन से अधिक कवियों ने अपनी प्रतिमा को आज़माया है 'अकनन्दुन' की करुण कथा है। एक दम्पति वचन पालने पर मजबूर हो स्वयं अपने हाथों अपने इकलौते बेटे को मार-काट कर पकाते हैं और खाते हैं तथा परीक्षा में पूरे उतर कर फिर उसे प्राप्त कर लेते हैं।"[१]

सर्वप्रथम प्रकाशराम (१८वीं शताब्दी) ने अकनन्दुन लिखा है।[२] आधुनिक युग तक अन्य अनेक कवियों ने इस कथा को पद्य बद्ध किया है। सर्वश्री रमज़ान भट्ट, अहद ज़रगर, समद मीर एवं अली वानी ने 'अकनन्दुन' चरित-काव्य लिखा है। इन काव्य कृतियों में करुण रस की प्रधानता है। 'अकनन्दुन' उस बालक का नाम है जो एक हिन्दू परिवार में जन्म लेता है। वह परिवार पुत्र-सुख से उस समय तक वंजित था और एक जोगी के आशीर्वाद ने उन्हें यह सुख प्रदान किया। जोगी ने उनसे यह वचन लिया था कि १२ वर्ष के पश्चात् बालक लौटाना पड़ेगा। इन १२ वर्षों तक अकनन्दुन के बाल जीवन का बड़ा ही मनोरम चित्रण इन कृतियों में मिलता है, क्योंकि इन कृतियों में आरम्भ से लेकर अन्त तक अकनन्दुन के जीवन का ही वर्णन मिलता है। अत: इनको चरित-काव्य के अंतर्गत लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। ये सब काव्य सुखान्त हैं। जीव को कठिन परिस्थिति में डालकर ब्रह्म उसकी परीक्षा लेता है और अनेक यातनाएँ सहन करने के लिए विवश करता है। संकटों को झेलकर जो कुछ शेष रहता है वह पारस है और यही इन काव्य-कृतियों का सन्देश है।

---

१. 'कश्मीरी भाषा एवं साहित्य—'पुष्प' पृ० १७।
२. 'स्ट्रगिल फार फ्रीडम इन कश्मीर'—पी० एन० बज़ाज, पृ० २८६।

परिशिष्ट

१. टोठान ्त्रि छुक भक्ति भावस
श्याम्ि रूपि लग्यो रामनावसु ॥

२. हज़रत नंबियस लगव् नावस वावस अ्थि व्निनावस ज़ार
सवाल पावस कोछु चुकावस वावस अ्थि व्निनावस ज़ार
गरम आ्भि अ्शि के खुोर ्ज़ि नावस् चशुमि ्ज़ि ्ति वन्दहस था ्विहमं सार
खो्शिकलभि सु्त्यि अदि पाद वथरावस वावस अ्थि व्निनावस ज़ार ॥

३. अज़ म्य वाद्यन कर दवा या मुहम्मद मुस्तफा
छुस ब्वु आमुत बाउम्मेद मं्ति का रतस ना उम्मेद
बोज़तम् लो्ल्कि सदा या मुहम्मद मुस्तफा ॥

४. साहिबा संथ् छम़् म्यु चानी वंथ् म्यु अस्लिच हावतम्
कूत कालाह रो्ज़ि बेजान जान्य हुन्द मस चावतम्
बोज़तम फंरयाद ज़ारी सोज़तम दवा
रोज़तम हरदम मंहरबान जाँह ्ति पंर्ि म्ति पावतम्
शक्लि छुस इन्सान मगर इनसानियत निश बेखबर
ह्यावतम मं्ति इम्तिहान यं्मि शक्लि् मं्ति मन्दछावतम् ॥

५. ज़ू फिदा कंरिहा वंतन चान्यन मगर तोत वा्ति कंर
द्ुरिरन बेताब कोरनस होल्ि तब छुम लोल आम
ला्रि हा पै छारहा व्ति गारहा तं्ति प्रारहा ॥

० ० ० ० ० ०

किसी व्यक्ति को उसके प्रश्नों से परखो, उसके उत्तरों से नहीं ।
—वाल्तेयर

० ० ० ० ० ०

पुरुष के लिए सबसे दुःखद बात तब होती है जब उसका ईश्वर तथा नारी पर से विश्वास उठ जाता है ।

एक पुरानी कहावत

सरला कौल एम० ए० (उत्तरार्द्ध)

क्षण की पुकार

जीवन की दरारों के बीच फँसा
एक मासूम छटपटाता हृदय
पुकार उठा अकस्मात्
अन्धेरा यदि बढ़ रहा है
तो उसे और अधिक बढ़ने दो
जल रहा है कहीं यदि कोई
उसे अधिक जलने दो।

चेतना के रेगिस्तान में
उसे प्यासा यूँ ही तड़पने दो।
सुर्ख रोशनाई से लिखे कोढ़ों को
और अधिक सुर्ख होने दो
श्रद्धा की मरहम लगा के
उन पर, ऊपरी खाल मत बनने दो।

पंखों में सिर छिपाये पक्षी
आज कैसे सिर उठाए
उसको मौन-मौत ही मरने दो।

'सहानुभूति' की वर्दी पहने कोई पुलिसवाला
आज मुझे ठीक उल्टी राह दिखाये
और जब मेरी गाड़ी टकरा जाए, तो—
मेरा 'केस डिसाइड' करने स्वयं ही आये।

हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा है
उसे होने दो, होने दो।
जीवित हैं सब, एक एक पल, एक एक क्षण
सपने सभी के बिक गये हैं—सरे बाज़ार

और रह गई है केवल मात्र
एक क्षणिक अनुभूति, एक ध्वनि, एक पुकार।

० ० ० ० ० ०

घन्टोली का स्वर्ण-दण्ड

एक राजा ने अपने एक प्रिय विदूषक से कहा, "अरे घन्टोली ! जा, विदेश जा और जो कुछ भी वहाँ दर्शनीय है उसे देखकर आ। इस स्वर्ण-दण्ड को लेता जा और अगर तुझे अपने से भी बड़ा कोई मूर्ख मिले तो उसे यह भेंट कर देना।"

बहुत दिनों बाद विदेश यात्रा से जब घन्टोली लौटा, तो उसने अपने राजा को चिन्ताजनक अवस्था में बीमार पाया। राजा ने उससे कहा कि "मैं एक बड़ी लम्बी यात्रा पर जा रहा हूँ। तू गया था उससे भी लम्बी यात्रा पर।"

घण्टोली बोला, "क्या आपने सारी तैय्यारियाँ कर ली हैं ?"

"नहीं, मैंने तो कोई तैयारी नहीं की है !" राजा ने कहा।

घन्टोली बोला "तब तो अवश्य ही यह स्वर्ण-दण्ड मुझे आपको भेंट करना होगा।"

डा० मुहम्मद अयूब खाँ,
प्राध्यापक हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय

छायावादी काव्य में दार्शनिक और रहस्यवादी अभिव्यंजना

छायावाद के प्रवर्त्तक 'प्रसाद' जी के काव्य में दर्शन और रहस्यवाद का अपूर्व सामञ्जस्य स्थापित हुआ है। प्रारम्भ में प्रसाद जी की प्रवृत्ति बौद्ध दर्शन की ओर रही है लेकिन कालान्तर में यह उनकी दृष्टि वेदान्त और शैवागम दर्शनों की ओर उन्मुख हो गई। प्रेम, आनन्द और सौन्दर्य की भावनाओं को प्रसादजी ने दार्शनिक रूप में ग्रहण किया है। उनकी प्रेम और सौन्दर्य की भावना लौकिक से आध्यात्मिक होती गई है। "अतः इनकी रहस्यवादी रचनाओं को देखना चाहें तो यह कहें कि इनकी मधुचर्या के मानस-प्रसार के लिए रहस्यवाद का पर्दा मिल गया अथवा यों कहें कि इनकी सारी प्रणयानुभूति ससीम पर से कूदकर असीम पर जा रही।[१]"

'कामायनी' में प्रसाद की चिंतन-धारा ज्ञानात्मक, बौद्धिक एवं दार्शनिक हो गई है। शैवागम के साथ उनके काव्य में अद्वैतवादी चेतना का सन्निवेश है। 'कामायनी' की दार्शनिक पृष्ठभूमि शैवतंत्र प्रत्यभिज्ञा है। आरम्भ में परोक्ष सत्ता के विषय में रहस्य-भावना का उन्मेष है जो प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है। यही अव्यक्त सत्ता प्रकृति की समस्त शक्तियों का संचालन करती है। लेकिन कालान्तर में परम शिव तत्त्व के दर्शन कराये गये हैं और अंत में आनन्दवाद तथा समरसता की परिसंस्था

---

१. अचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५९२–९३।

पना की गई है। यह समरसता की अवस्था ज्ञान, क्रिया तथा इच्छा के तीन बिन्दुओं के अथवा त्रिकोण के बीच के अन्तर के पर्यवसित हो जाने पर ही सम्भव है। शुद्ध विद्या के द्वारा यह भेद अथवा द्वयता नष्ट हो जाती है। ईश्वरेच्छा रूप इसी शुद्ध विद्या के द्वारा तीनों कोणों को परम बिन्दु अथवा अद्वैत में अन्तर्भूत किया जा सकता है। प्रसादजी ने बिखरे हुए तीन बिन्दुओं के द्वारा त्रिपुर को संदर्शित किया है।[1] यह त्रिपुर अथवा तीनों कोण परस्पर सम्बद्ध होने के पश्चात् श्रद्धा (शुद्ध विद्या) की तेजाग्नि से धधकने लगते हैं। महाकाल का विषम नृत्य होने लगता है और तदनन्तर तुरीयावस्था में जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति के पर्यवसित होने पर ज्ञान, इच्छा और क्रिया तीनों मिल कर एक त्रिकोण में लय हो जाते हैं।

"स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा, क्रिया ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।"[2]

यहाँ आकर योगी अथवा साधक आनन्दावस्था में सामरस्य का अनुभव करता है। "आनन्द शक्ति विश्रान्ते योगी समरसो भवेत्"[3] इसीमें अद्वैत की पूर्ण स्थिति है।[4] 'नेत्रतंत्र' में भी इसी स्थिति का विवेचन प्राप्त होता है—

"नाहमस्मि न चान्योऽस्तिध्येयं चात्र न विद्यते।
आनन्द पदसंलीनं मनः समरसीगतम्।"[5]

प्रसाद जी दर्शन के आधार पर ही रहस्यवाद को प्रस्यूत कर सके हैं। अतः उनका रहस्यवाद आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति है। उन्होंने

---

१. यही त्रिपुर है, देखा तुमने तीन बिन्दु ज्योतिर्मय इतने।
अपने केन्द्र बने दुख सुख में भिन्न हुए है ये सब कितने।
कामायनी—रहस्य, पृ० २०८।
२. कामायनी—रहस्य सर्ग, पृ० २१६।
३. अभिनव गुप्त—तंत्रा लोक, भाग १, पृ० २६।
४. वही पृ० वही।
५. नेत्र तंत्र, भाग १, पृ० १६८।

सौन्दर्य दर्शन और प्रेमानुभूति को अद्वैत के आधार पर ही उपयुक्त ठहराया है। 'जल थल मारुत व्योम में' परिव्याप्त परोक्ष सत्ता के प्रति ससीम के कोमल भाव व्यक्त किये गये हैं।[१] यह अज्ञात प्रियतम जो प्रकृति के कण कण में अधिवसित है, पूर्णतः अज्ञात है। वह सत्ता अनन्त है, रमणीय है, विराट् है, लेकिन बोधगम्य नहीं है। इसी अज्ञात प्रियतम के अनुपम सौन्दर्य की एक किरण धरा पर विचरण करने के लिए अवतरित होती है। उस अनुपम किरण की प्रभा कितनी उज्ज्वल एवं पवित्र है। उसका मुग्ध रूप दर्शनीय है—

प्रसादजी की कला में दार्शनिकता इतनी घुलमिल गई है कि दोनों में पार्थक्य नही दिखाई देता। वर्णन शैली और भाषा का स्वरूप भी दार्शनिक हो गया है। रहस्यवाद और दार्शनिक चिंतन दोनों कलापक्ष के अंग बन गये हैं।

"किसी अज्ञात विश्व विकल वेदना-दूती सी तुम कौन?
अरुण शिशु के मुख पर सविलास, सुनहरी लट घुँघराती कान्त।
नाचती हो जैसे तुम कौन? ऊषा के अंचल में अश्रान्त।"[२]

महाकवि निराला पर उपनिषदों के तत्व-चिंतन का बहुत गम्भीर प्रभाव है। वे अद्वैती वेदान्त के विस्तृताकाश में उन्मुक्त उड़ानें भरते दिखाई देते हैं। यह अद्वैत प्रधान रूपेण स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस की विचार-धारा से अनुप्राणित है। कहीं कहीं बौद्ध और मार्क्स दर्शन के भी प्रभाव के कारण हैं। निराला का अद्वैत-चितन केवल अध्यात्म-वादी ही नहीं है अपितु व्यावहारिक भी है।

निराला के काव्य में दार्शनिकता दो रूपों में है—एक चिंतन प्रधान रूप में और दूसरी रागात्मक अथवा भाव प्रधान रूप में। इस भाव-प्रधान दार्शनिकता की संज्ञा 'दर्शन परक रहस्यवाद' दी जा सकती है। चिंतन-प्रधान कविताओं में कवि ने कोरे सैद्धांतिक दर्शन का प्रतिपादन किया है। 'परलोक', 'अध्यात्म फल', 'माया' 'पंचवटी-प्रसंग' आदि कविताओं में काव्यात्मक पक्ष दमित हो गया है तथा दर्शन का प्रतिपादन ही कवि का

---

१. स्कन्द गुप्त—द्वितीय अंक।
२. झरना, किरण, पृ० २८।

उद्देश्य प्रतीत होता है। दार्शनिक तथ्य-निरूपण मात्र होने के कारण ये कविताएँ प्रायः नीरस हो गई हैं। इनमें बुद्धि-तत्व की ही प्रधानता है।

निराला ने जगत् के विविध दृश्यों की स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति को ही दार्शनिक कवि का आदर्श बताया है—"साहित्यिक संसार की अच्छी चीजों का समावेश अपने साहित्य में करते हैं और उनके प्राणों के रंग से रंगीन होकर वे चीजें साधारणों को भी रंग देती हैं।"[१] प्राणों का रंग अन्तरात्मा की पिचकारी से निःसृत होता है। अतः जो कवि इस प्रकार की रचना करता है उसे रस-सिद्ध की संज्ञा प्राप्त होती है। 'अर्चना' के विषय में कवि की उक्ति इसी सत्य को प्रमाणित करती है। "रस-सिद्धि की परताल कीजिएगा, तो कहना होगा कि हिन्दी के भाषा-साहित्य में ज्ञानी और भक्त कवियों की पंक्ति की पंक्ति बैठी हुई है, जिनकी रचनाएँ साधारण जनों के जिह्वाग्र से अमृत की धारा बहा चुकी हैं, ऐसी अवस्था में लोकप्रियता की सफलता दुराशामात्र है।"[२]

निराला अपने जीवन में ही आध्यात्मिकता में डूब चुके हैं। अतः काव्य की व्याख्या भी वे आध्यात्मिक रूप में करते हैं। 'निराला' के मतानुसार काव्य की आत्मा 'रस' ही है। उनके हृदय में 'रसोवैसः' के प्रति घनीभूत ममता है। रस की अलौकिकता जिस कवि के काव्य में जितनी ही अधिक होती है वह निराला के मतानुसार उतना ही महान् कवि माना जाता है। उन्होंने काव्य-शिल्प का स्वरूप भी आध्यात्मिकता के द्वारा समझाया है। "मुक्तकाव्य में बाह्य समता दृष्टि गोचर नहीं हो सकती, बाहर केवल पाठ से उसके प्रवाह में जो सुख मिलता है, उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध धारा प्राणों को सुख-प्रवाह-सिक्त निर्मल किया करती है, वही इसका प्रमाण है। जो लोग इसके प्रवाह में अपनी आत्मा को निमज्जित नहीं कर सकते, उसकी विषमता की छोटी-बड़ी तरंगों को देखकर ही डर जाते हैं, हृदय खोल कर उससे अपने प्राणों को मिला नहीं सकते, मेरे विचार से यह उन्हीं के हृदय की दुर्बलता है।[३] निराला जीव के समान ही काव्य की भी मुक्ति मानते हैं। उनका कथन है—"मनुष्यों की मुक्ति कर्मों

---

१. गीतिका, भूमिका पृ० ५।
२. अर्चना, भूमिका पृ० क।
३. पंत और पल्लव, पृ० ४४।

के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं—फिर भी स्वतन्त्र। इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता है, प्रत्युत् उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।[1]

इस प्रकार 'निराला' जी ने आध्यात्मिक ढंग पर ही अपनी मान्यताओं को प्रकट किया है। प्राय: दार्शनिक काव्य में कल्पना तथा रसावेग का अभाव ही दिखाई देता है लेकिन 'निराला' ने अपनी उपर्युक्त मान्यताओं का पालन करते हुए उसे सरस रूप प्रदान किया है। कल्पना-तत्व के समावेश से शुष्क से शुष्क तथा अमूर्त से अमूर्त भाव भी हृदय-ग्राह्य बन गया है। उनके दार्शनिक काव्य में विचार, भावना तथा कल्पना का अपूर्व समन्वय परिलक्षित होता है। 'तुम और मैं', 'प्रेयसी' 'रेखा' आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

'निराला' ने संगीत-तत्व के द्वारा काव्य को सहज प्रसारण की शक्ति दी है। संगीत स्वयं आत्मा को अभिभूत करने में समर्थ है और फिर जब कवि अपनी आत्मा को संगीत-तत्व के साथ एकात्म कर दे तब तो वह काव्य शाश्वत सत्य बन जाता है। 'निराला' ने अपने दार्शनिक चिंतन को मुखरित करने के लिए प्रगीत शैली को ही अपनाया है। छायावादी भावधारा के अनुकूल ही निराला ने प्रकृति तथा मानवीय चिन्तन का अद्वैत सम्बन्ध व्यक्त किया है। मानव-जगत् के साथ-साथ प्रकृति भी चिंतन में मग्न दिखाई गई है। आकाश, बादल, समुद्र आदि प्रकति के विराट् तत्व उनके काव्य में विशेष प्रतीक बन कर आये हैं।

निराला के काव्य में बुद्धि तत्व की ही प्रधानता है। लेकिन यह तत्व क्रमश: भावना के रूप में उसी प्रकार पिघलता गया है, जिस प्रकार चन्द्रकांतमणि घुलती है। अन्त में उनकी दार्शनिकता आध्यात्मिकता भक्ति के करुण रूप में पर्यवसित दिखाई देती है। निराला को कवि का हृदय और दार्शनिक का मस्तिष्क मिला है। एक ओर उनमें भावना का प्रखर आवेश

---

१. परिमल, भूमिका, पृ० १९।

है, तो दूसरी ओर चिंतन जन्य गहन गम्भीरता। निराला ने दर्शन को स्निग्धता प्रदान की है। रामकृष्ण परमहंस की साधना का माधुर्य तथा विवेकानन्द के बौद्धिक चिंतन से ही निराला की दार्शनिकता को आकर्षक रूप प्राप्त हुआ है। निराला की दार्शनिकता को दर्शन परक रहस्यवाद कहा जा सकता है। 'दर्शन परक रहस्यवाद' में दार्शनिक तथ्यों को काव्य में पूर्णतः आत्मसात किया जाता है। यहाँ दार्शनिक तथ्य और काव्यात्मक तत्व का सुन्दर सामंजस्य होता है। निराला का अधिकांश काव्य इसी प्रकार का है, जिसमें दार्शनिक तथ्य शरीर में आत्मा की भाँति अनुप्रविष्ट है। "निराला की रहस्यभावना के पीछे वेदान्त की एक सुनिश्चित आधार भूमि है। इसी कारण इनकी रहस्यवाद से सम्बन्धित रचनाओं की अनुभूति रसमय एवं संवेद्य रहती है, अन्य कतिपय रहस्यवादी कवियों के समान वायवीय नहीं रह जाती।"[१]

यद्यपि पंत जी आस्तिक आदर्शवादी कवि हैं तथापि जानबूझ कर उन्होंने अपने दार्शनिक चिंतन और रहस्यवादी भावना को आध्यात्मिक होने से बचा लिया है। उनके रहस्यवाद का शुद्ध साहित्यिक महत्व है। जहाँ भी आध्यात्मिक चित्रण का हमें आभास होता है वहाँ प्रकृति के ऐसे सुन्दर दृश्य है, जिनमें मानवानुभूति को जाग्रत करने की क्षमता एवं पृथक् सत्ता को विसर्जित करने का एक अपूर्व सम्मोहन है। जहाँ अनायास ही सहृदय परोक्ष सत्ता का अनुभावन करने लगता है। 'मौननिमंत्रण' नामक कविता में सम्मोहन प्रभाव को सहज ही प्राप्त किया जा सकता है। वैसे कवि ने उपर्युक्त कविता में रहस्यवादी भावना स्वीकार नहीं की है फिर भी उसके व्यक्त रूप में किसी अव्यक्त सत्ता का संकेत मिले तो सहृदय के इस अनु-भावन को 'पंत' जी अस्वीकार कैसे कर सकते हैं? 'पंत' जी ने एक स्थल पर निश्चय ही भावकों के इस अनुप्रेक्षण पर आपत्ति उठाई है। मेरी "मौन निमंत्रण", 'प्रथम रश्मि' आदि जिन अल्प संख्यक रचनाओं को रहस्यवाद के अन्तर्गत रखा जाता है, उनमें भी केवल उक्ति-वैचित्र्य, कला संकेत या लक्षणा के परिधान के कारण ही इस भ्रम को पोसा गया है।"[२] दार्शनिक रूप में वे स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामतीर्थ,

---

१. 'साहित्य-संदेश', निराला विशेषांक पृ० ४२६।
२. छायावाद, पुनर्मूल्यांकन पृ० २१।

गाँधी, मार्क्स और अरविन्द के दर्शनों से प्रभावित हुए हैं। इसी क्रम को उन्होंने एक स्थल पर स्वीकार भी किया है—"मैं सर्व प्रथम स्वामी रामकृष्ण (परमहंस), विवेकानन्द तथा रामतीर्थ के दर्शनों से प्रभावित था पर मेरे मन ने उन्हें पूर्णतः स्वीकार नहीं किया। मैं गाँधीजी तथा मार्क्स के जीवन-दर्शनों से प्रभावित हुआ, पर पूर्णतः उन्हें भी नहीं स्वीकार कर सका। मैं श्री अरविन्द दर्शन के सम्पर्क में आया, पर सम्पूर्णतः उसे भी नहीं अपना सका।"[1]

इस प्रकार पंत जी ने काव्य में दर्शन को केवल प्रभाव रूप में ही ग्रहण किया है उसका कोई स्वतन्त्र महत्व नहीं है। वे दृश्यमान जगत् के अतिरिक्त एक अलौकिक जगत् का संकेत भी करते हैं[2] जिससे जिज्ञासा की उद्भावना होती है। भौतिक जीवन के परे कोई शाश्वत जगत् है। निम्न लिखित पंक्तियों में दर्शन और रहस्यवाद का अपूर्व समन्वय है—

इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत ह्वै गति, शाश्वत संगम।
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का रजत हास'
शाश्वत लघुलहरों का विलास।
हे जग जीवन के कर्णधार! चिर जन्ममरण के आर पार
शाश्वत जीवन नौका विहार।
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण।
करता मुझको अमरत्व दान।[3]

इसी अनित्य स्वरूप वाले परिवर्तन के मूल में नित्य सत्ता का अधिवास है। जगत् उसकी विवृत्ति है। ब्रह्म की दिव्य विभूतियों का विविधाभास अद्वैतरूप में कवि को अनुभव होता है। जड़चेतनमय सम्पूर्ण

---

१. छायावाद का पुनर्मूल्यांकन पृ०, ८१।
२. आज का दुख कल का आह्लाद।
और कल का सुख आज विषाद।
समस्या स्वप्न गूढ संसार,
पूर्ति जिसकी उस पार। (परिवर्तन नामक कविता से)
३. गुंजन— नौकाविहार मार्च १६३२।

जगत् में एक ही प्राण-धारा प्रवाहित हो रही है। प्रकृति में इस विराट् सत्ता का स्फुरण सर्वचेतनवाद के रूप में दिखाया है।[1]

पंत जी के मतानुसार जीव और ब्रह्म दोनों ही पवित्र एवं निर्मल हैं। मानस पर माया का आवरण उसी प्रकार है जैसे नीले स्वच्छ आकाश पर बादल आच्छादित हो जाते हैं।[2] सुकुमार भावनाओं के कवि होने के कारण पंत जी विषम यथार्थ से उत्पीड़ित प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि उनकी चेतना मुक्ति के साधन खोजने के लिए अध्यात्मवाद से मार्क्सवाद, मार्क्सवाद से गाँधीवाद और गाँधीवाद से श्री अरविन्द के दर्शन तक उद्भ्रान्त होने लगी है और अन्ततोगत्वा उसे इन सबके समन्वय में ही अपनी व्याकुलता का प्रशमन मिला है। इन विभिन्न प्रभाव-योनियों में आविर्भूत और तिरोभूत पंत जी की विचारधारा में सर्वत्र एक विशिष्टता रही हैं—वह है सृजन और नाश की अनुक्रमणिका। यही विशेष विचारधारा जो अविच्छिन्न रूप से उनके काव्य में प्रवाहित है, उनके उपर्युक्त दर्शन-प्रभावों के समन्वित रूप की परिचायिका है। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार सृजन और नाश, आरोहण और अवरोहण और क्रिया-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त भारतीय दर्शन की सृष्टि और प्रलय से भिन्न नहीं। श्री अरविन्द के अनुसार भी सच्चिदानन्द का आरोहण और अवरोहण होता है। यह विशिष्ट विचार-धारा प्रायः सभी रचनाओं में मिलती है। श्री अरविन्द के अनुसार पदार्थ और चैतन्य में कोई विरोध नहीं है। अचल से ही गति का उदय सनातन सत्य है। तभी पंत जी का अनुचिंतन है—

जड़-चेतन के चक्र निरन्तर
घूम रहे चिर प्रलय सृजन कर।
जय-ध्वनि हाहा रव में बढ़ता
युगपथ-पर मानवता का रथ।[3]

महादेवी वर्मा के रहस्यवाद में भाव संवेदना तथा ज्ञान का अपूर्व समन्वय है। उनके काव्य का दार्शनिक पक्ष वेदना एवं प्रेम की मधुर

---

१. 'नित्य जग'—आधुनिक कवि पंत।
२. वीणा, पृ० १०।
३. उत्तरा, पृ० २५।

अनुभूति का संस्पर्श करके साकार हो उठा है। दुःख और करुणा के भाव को दार्शनिक रूप देते हुए दुख से मुक्ति पाने के लिए अष्टांगिक मार्ग का परिपालन करने का उपदेश न देकर उन्होंने उसमें सम्पूर्ण सृष्टि को एक सूत्र में संगुम्फित करने की क्षमता बताई है। बौद्ध दर्शन का प्रभाव उन्होंने स्वीकार किया है—"वचपन से ही भगवाण् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया।[1]" अतः 'मैं नीर भरी दुख की बदली' उक्ति में सम्पूर्ण व्यथा सिमट आई है। विरहिणी आत्मा अपना सम्पूर्ण प्रेम लेकर असीम प्रिय से मिलने को तड़पती है। प्रियतम के पथ को आलोकित करने के लिए जीवन का दीप लिए हुए आत्मा रूपी विरहिणी प्रतीक्षा में बैठी है—

मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग प्रतिदिन प्रतिपल प्रतिक्षण
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

सौरभ फैला विपुल धूप बन, मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन।
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित, तेरे जीवन का अणु गल-गल।[2]

महादेवी जी के मतानुसार आधुनिक काव्य की दार्शनिकता ने "पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्रग्रहण की, लौकिक प्रेम की तीव्रता उधार ली और इन सबको कवीर के सांकेतिक दाम्पत्य भाव-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को आलम्वन देसका।[3] महादेवी जी के काव्य में अद्वैतवाद ही प्रायः प्रोद्भासित हुआ है। उनके प्रणय-गीतों में से दार्श निकता चन्द्रकांतमणि द्वारा प्रस्रवित शीतलता के समान संवेद्य बन गई है। अनुभूति की तीव्रता ने आध्यात्मिक सत्य को अन्तर्भूत कर लिया है। आध्यात्मिक सत्य को व्यक्तिगत अनुभूति के द्वारा भाव-प्रवण एवं संवेद्य बनाया गया है—

---

१. यामा की भूमिका।
२. यामा, पृ० १४५।
३. यामा, पृ० ८।

कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने,
याद में उन अंगुलियों के
है मुझे पर युग बिताने,[1]

यहाँ दार्शनिकता के साथ काव्य के तत्वों का समन्वित रूप परि-लक्षित होता है। कहीं असीम के प्रति जिज्ञासा का भाव है और कहीं उसकी रहस्यात्मक प्रभा चिर विरहिणी के जीवन में करुण का स्रोत बहाती दिखाई गई है। यहाँ दर्शन मधुर भावों से अनुरंजित है। वास्तव में महा-देवी जी का चिंतन सर्वात्मवादी दर्शन के अन्तर्गत माना जा सकता है। उनकी आत्मा में चिरंतन विकलता हैं। कहीं-कहीं भक्त कवियों की भाँति उनके रहस्यवाद में मधुर-भाव ओतप्रोत है। यहाँ वे अद्वैतवादी होते हुए भी द्वैत भाव के प्रति अपनी ममता को प्रदर्शित करती हैं :—

"रंगमय है देव दूरी !
छू तुम्हें रह जायगीं यह
चित्रमय क्रीड़ा अधूरी
दूर रह कर खेलना पर
मन न मेरा मानता है।"[2]

लेकिन कहीं-कहीं यह द्वैत अद्वैतावस्था तक पहुँचा दिया गया है। यहाँ असीम अकिंचन ससीम से एकात्म है। दोनों का सम्वन्ध अंग-अंगी का है। यहाँ द्वैत में हीं अद्वैत है—

"चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर संगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?
तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या ?[3]

---

१. यामा, पृ० २१८।
२. यामा, पृ० २२५।
३. नीरजा—महादेवी वर्मा।

यही अद्वैत सर्वात्मवादी दर्शन का अन्तर्भूत अंग है। इसके परिवेश में कवयित्री विश्वसुन्दरी प्रकृति में विश्वात्मा की अनभूति प्राप्त करती है। यहाँ दर्शन और रहस्यवाद एक दूसरे में ऐसे घुलमिल जाते हैं कि पार्थक्य सम्भव नहीं।

निष्कर्ष—

आधुनिक काव्य में रहस्यवाद और दर्शन के समावेश से सर्वत्र एक उदात्त स्वरूप दिखाई देता है। रहस्यवाद में दार्शनिक तथ्य कवि के भावों और अनुभूतियों से छनकर काव्य में अवतरित होते हैं। यहाँ पर दर्शन का सत्य भावात्मक रूप में अभिव्यक्त होने के कारण सुन्दरं में परिणत हो जाता है जिसक प्रभाव शिवं के रूप में अनुभव होता है। प्राय: ऐसे ही रहस्यवादी कवि श्रेष्ठ माने जाते हैं, क्योंकि उनके काव्य में जीवन दर्शन काव्य का ही अंग बन कर प्रकट होता है। इसके विपरीत जिन कवियों के काव्य में दार्शनिकता काव्यात्मक तत्वों के साथ गुम्फित और एकीभूत नहीं होती वे केवल दार्शनिक अथवा साम्प्रदायिक अध्यात्मवादी कवि तो कहलाये जा सकते हैं लेकिन बौद्धिक अथवा चिंतन की रुक्षता के कारण रहस्यवादी नही कहलाये जा सकते। अत: ऐसे कवि द्वितीय श्रेणी अथवा साधारण कोटि के ही माने जा सकते हैं। काव्यात्मक रूप के अभाव में ऐसे कवि केवल प्रचारक अथवा कोरे दार्शनिक ही माने जायेंगे। दार्शनिक कवि तर्कों के सोपान पर चढ़ता हुआ अपने मत का प्रतिपादन कर सकता है लेकिन श्रेष्ठ कवि उतना ही ज्ञान रखते हुए अपनी ज्ञान-राशि को बिम्बात्मक रूप में ढालने की कठोर साधना करता है। यह कठिन कार्य अनुभूतियों के आधार पर ही सम्पन्न किया जाता है।

रहस्यवाद ससीम और असीम के चिरन्तन अद्वैत से लेकर प्रेममूलक अनुभूतियों का लोक है। यहाँ कवि अपनी सत्ता को परोक्ष सत्ता का तद्रूप और प्रतिरूप समझता है। प्रकृति, विश्व और मानव में परोक्ष तत्व की प्रतीति अनिवार्य होती है। जो कवि दर्शन का आधार लेकर केवल तथ्य-निरूपण को ही काव्य समझने लगते हैं, वे भूल करते हैं। दर्शन का समावेश केवल उसी सीमा तक होना चाहिए जहाँ दार्शनिक साधना शुद्ध काव्य के साथ अन्तर्लीन हो सके। अत: "समर्थ कवि अपनी प्रतिभा के बल पर दार्शनिक विचारों को, काव्यात्मक तत्वों को इस प्रकार गुम्फित कर देते हैं कि

दोनों का सुन्दर सामंजस्य हो जाता है। प्रसाद, निराला और पंत की रचनाओं में ऐसे समन्वयात्मक स्थलों की कमी नहीं है।''

इस प्रकार काव्य और दर्शन का घनिष्ठ सम्बन्ध है दोनों का उद्देश्य जीवन की व्याख्या करना है। हाँ प्रयोग की प्रविधियों में केवल अन्तर है। काव्य में बौद्धिक और मानसिक समन्वय होता है। काव्य मूल रूप से भावात्मक दृष्टि को महत्व देता है। इसके विपरीत दर्शन जीवन के प्रति बौद्धिक दृष्टि अपनाता है। काव्य व्यापक भावनाओं और शाश्वत सम्भावनाओं की व्यंजना करता है। दर्शन शाश्वत विचारों का प्रचार एक बँधी हुई परिपाटी में करता है। काव्य में आकर्षक कला और मार्मिकता मानवात्मा को सांत्वना देती है लेकिन दर्शन अनेक मतों के विरोध द्वारा बहुत सी ग्रन्थियों में उलझाता है। किन्तु जब दर्शन काव्य का अंग बन जाता है तब वह सत्यं शिवं सुन्दरं की अवस्था में मनोहर रूप धारण करता है।

प्रत्येक कला और प्रत्येक काव्य का अपना दर्शन होता है। काव्य के दर्शन का अर्थ है कि दर्शन पृथक् सत्ता धारण न करके केवल काव्य का ही अंग हो गया हो। श्रेष्ठ काव्य में समन्वय और आत्मसात् की प्रमुख विशेषता होती है। अस्तु, दर्शन की कटु सत्यता तथा तथ्यों की रुक्षता काव्य के परिवेश में आकर मधुर एवं रमणीय रूप में परिवर्तित हो जाती है। यही कारण है कि प्रत्येक देश के उच्च कोटि के काव्य के मूल प्रेरणा स्रोतों में से दर्शन महत्वपूर्ण रहा है। संसार का प्रत्येक श्रेष्ठ कवि दार्शनिक रहा है। उसके मानसिक विकास का शमन प्रायः दार्शनिकता में ही हुआ है। "दर्शन मनुष्य के वैयक्तिक संघर्ष का इतिहास है। इस दृष्टि से कवि जो कुछ भी लिखता है अपने वैयक्तिक संघर्ष द्वारा प्राप्त अनुभव के आधार पर ही लिखता है और वही उसका दर्शन है।''[२]

प्रत्येक युग के काव्य में सामयिक विचारधाराओं और दार्शनिक प्रवृत्तियों का पर्याप्त प्रभाव होता है। आधुनिक काल में भी यह विशेषता मिलती है छायावाद का नवीन दर्शन रहस्यवाद माना जाता है, जिसे सर्वात्मवाद की संज्ञा मिली है। अतः छायावाद का मूलाधार दार्शनिक ही है। छायावादी कवियों ने मध्ययुगीन रहस्यवादी एवं दार्शनिक कवियों की अपेक्षा अपनी

---

१. काव्य की भूमिका—रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ ८२।
२. आधुनिक कवि (भाग दो)—श्री सुमित्रानन्दन पंत।

सौन्दर्य दृष्टि अधिक व्यापक एवं उदार बनाई है । उन्होंने अपने काव्यात्मक भाव-बोध से हृदय के संस्पर्श करने की अपूर्व क्षमता प्राप्त की है । नवीन सौन्दर्य संवेदना और भावना-गाम्भीर्य की दृष्टि से छायावाद का दार्शनिक एवं रहस्यवादी काव्य अनुपम है । नवीन मूल्यों से अनुप्राणित, नूतन कला बोध एवं शिल्प से गौरवान्वित एवं विश्व-चेतना से गर्भित छायावादी काव्य ने मानव-हृदय में निवसित आलोक को विकीर्ण किया है । भावी मानव-मूल्य एवं भावी जीवन-आस्था को संजोते हुए यह काव्य विश्व-जीवन का व्यापक संवेदन प्रदत्त कर सका है ।

० ० ० ० ० ०

म्यान सो कलमदान करतें निकारी
तामें स्याही जल विष में बुझाई बार बार है ।
चारु उक्ति जौहर जगावत सनेह संग
अकिल अनेक तामें सिकिल सुढार है ।।
'जुगुल किसोर' चलै कागद धरा पै धाय
धारें न दया कों नेकु लागै वार पार है ।
पाइकें गँवार-गाय साफ करे साइत में
मुनसी कसाई की कलम तरवार है ।।

—जुगलकिसोर

● ● ●

पत्थर एक ही है । एक से स्वर्ण निकलता है और एक उसकी कसौटी बनता है । इसी प्रकार वृत्ति का भेद ही मनुष्य के मूल्य और महत्व का निर्धारण करता है ।

सोमनाथ कौल एम०ए० (अनुसंधित्सु)

पाम्पुर के रक्त-बीज

बहार आई और
केसर के खेतों में
आज फिर
श्रम-जीवियों का
लाल रक्त अंकुरित हुआ
जिसकी मादक लहर
दिग-दिगंत में,
मचल रही है—
महक रही है ।

इसे प्राकृतिक 'सीनरी'
समझकर भारी जेब और
मोटे पेट वाले
सभ्य-संस्कृत लोग
इसका मज़ा लेने
चाँदनी में आते हैं ।
जैसे ही
इसका खूनी सीज़न
समाप्त हो जाता है,

वे सभ्य-संस्कृत लोग
इसकी प्यासी सीमा पर भी
नहीं फटकते ।

जैसे, शीतकाल में
मुहल्ले के नटखट बच्चे
बर्फ गोल करके, कौशल से
उस पर नयन-नक्श तराशकर
एक पुतला बनाते हैं
और मज़ा लेते हैं,
और जब
उसका
नयन-नक्श
पिघल जाता है
तब
सभ्य माँ-बापों के वे
संस्कृत बच्चे, फिर
उसमें कोई रुचि नहीं रखते हैं ।
उसे कुचल-रौंद कर छोड़ जाते हैं

उधर वे
जिन्हें
रक्त का मूल्य
मिले या न मिले
(और जो अभी पिछले घावों
को भी भर नहीं पाए हैं)
इसी चिन्ता में हैं
कि रक्त बोने का समय
फिर आने वाला है ।

० ० ० ० ० ०

(पाम्पुर में केसर की खेती होती है ।—सम्पादक)

डा० शशिभूषण सिंहल, हिन्दी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

सामाजिक उपन्यास : हिन्दी के संदर्भ में

सामाजिक उपन्यास, अपनी छोटी सी दुनिया में, सामाजिक गठन-तन्तु का अन्वय करता, सामाजिक मूल्यों को आंकता और उन्हें चरितार्थ करता है। समाज मानव के विकास-क्रम की देन है। व्यक्ति ने अपने रति सम्बन्धों और पैतृक मूलवृत्ति से प्रेरित होकर पारिवारिक जीवन अपनाया है। अपने परिकर की हित-कामना से उसकी सामाजिक भावना बढ़ती गई है।

सामाजिक संगठन शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से प्रायः समान स्तर वाले व्यक्तिसमूह का होता है। उस समूह की सामान्य भाषा, सामान्य विश्वास और सामान्य रीतियाँ गठन-कार्य में सहायक होती हैं। सामाजिक धारा में भले ही व्यक्ति आकर मिलते और उससे विलग होते रहें, किन्तु उसकी परम्परा अक्षुण्ण रहती है। 'एनसाइक्लोपीडिया आॅफ़ दी सोशल साइंसेज़' के अनुसार, मनुष्य अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष तौर पर जुटा रहता है। मनुष्य के इस कार्यकलाप के फलस्वरूप विकसित मानव-सम्बन्धों का संकुल रूप 'समाज' है। अतः समाज मनुष्य के सामूहिक गतिशील जीवन का प्रतिफल है। इस संस्था पर मनुष्य की वंश-परंपरा, परिवेश, संस्कृति, वैज्ञानिक बोध एवं पद्धति, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक विचार-प्रणालियों और कलात्मक अभिव्यंजना-रीतियों का भी प्रभाव रहता है। ये तत्त्व यद्यपि स्वयं समाज नहीं हैं, फिर भी उसके विधिवत्

प्रकाशन में सहायक होते हैं। समाज इन तत्त्वों से वियुक्त होकर नहीं रह सकता।[1]

साहित्य—समाज—उपन्यास

मानव-जीवन के अन्तर्गत व्यक्ति और समाज का सम्बंध अटूट है। साहित्य इस गहन सम्बन्ध को पुष्ट करता है। उपन्यास, इसी मान्यता को कथात्मक रूप देता है। प्रस्तुत प्रसंग में हिन्दी सामाजिक उपन्यास के प्रणेता, मुंशी प्रेमचन्द के विचार उद्धरणीय तथा विवेचनीय हैं। उनके अनुसार, "साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है; दूसरे शब्दों में, उसी की बदौलत मन का संस्कार होता है।"[2]

'जीवन' का अर्थ है, शरीरधारी में, मानव में, प्राणों का अस्तित्व; मनुष्य का जीवन उसके जन्म से मृत्यु तक का काल है। जीवन गतिशील है; वह एक यात्रा है जिसका आरम्भ जन्म है और मंजिल मृत्यु। उस मंजिल, जीवन के अन्तिम क्षण—मृत्यु—को स्वाभाविक, शान्तिमय बनाने के लिए मनुष्य को जीना होगा, अच्छी तरह जीना होगा। अतः जीवन की गति जीने, अच्छी तरह जीने में है। इस जीवन-गति के मार्ग में अनेक बाधायें हैं। क्या कलाकार और क्या विचारक, सभी के सामने समस्या है कि यह गति निर्बाध क्योंकर हो। विश्व में मनुष्य अकेला नहीं, अनेक के साथ है। एक और अनेक (व्यक्ति और समाज) के हितों की पारस्परिक टकराहट से मनुष्य के जीवन में गतिरोध दृष्टिगोचर होता है। अहंकार का पुतला मनुष्य अपने अज्ञानवश प्रायः अवशिष्ट बरसाती जल की भाँति स्वार्थ के गड्ढों-पोखरों में केन्द्रित हो सड़ता-सूखता है। वह स्वयं जीना, फूलना-फलना चाहता है, दूसरों का अधिकार छीनकर। फलतः दुनिया में एक का, अनेक का—सब का—जीवन जीना दूभर हो गया है। जन-जीवन की इसी अव्यवस्था या अस्वाभाविकता को दूर कर उसे सरिता जैसा सरल, स्वच्छन्द प्रवाह प्रदान करने के लिए समाज में महापुरुष जन्म लेते हैं और क्रान्ति-रूपी बाढ़ें आती हैं।

---

१. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ दी सोशल साइंसेज़' (खंड १३)–प्रधान संपादक, ए० आर० ए० सैलिगमैन, पृ० २३१।

२. 'साहित्य का उद्देश्य' निबन्ध से। देखिए 'कुछ विचार' निबन्ध-संग्रह का पृ० १९।

इस उलझन से पार पाने का एक ही तरीका है कि व्यक्ति अपने संकीर्ण स्वार्थों से तनिक ऊपर उठकर 'पर' या समाज के अस्तित्व को पहचाने और स्वीकार करे। समाज व्यक्ति के विकास में बाधक नहीं, साधक है। आध्यात्मिक दृष्टि से 'स्व' और 'पर' एक ही है; सब परमात्मा के भिन्न भासित होने वाले रूप-मात्र हैं। यदि यह तत्त्व हमारी समझ में नहीं आता तो भी हमें अपने सुख-सुविधा के लिए ही सही, परस्पर सहयोग करने की बान डालनी होगी। अतः जीवन-गति को सहज बनाए रखने का मूल मंत्र है—'जियो और जीने दो'। प्रेमचन्द का साहित्यकार अपनी रचनाओं द्वारा 'जियो और जीने दो' का सन्देश देकर लोगों में सहिष्णुता और सहयोग का भाव जगाकर मानव-जीवन को गतिशील बनाता है, 'स्वाभाविक' बनाता है। वह मनुष्य के अहम् और स्वार्थ के बाँधों को तोड़ संकीर्णता, विषमता की काई को छाँट कर जीवन-प्रवाह को निर्मलता, निर्बाधता प्रदान करता है।

'स्वाधीन' वह व्यक्ति है जो आत्म-विकास की दिशा को स्वयं पहचानता है, जिसमें स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता है। किन्तु सामाजिक परिपाटियों, रूढ़ियों में मन से जकड़ा हुआ व्यक्ति पराधीन देखा जाता है। उसमें युग की बदलती परिस्थितियों के अनुसार, पूर्व-प्रचलित जीवन-मानदण्डों के पुनर्मूल्यांकन की सामर्थ्य नहीं रहती। लोगों के रूढ़ि-पालन के मोह के कारण समाज-प्रवाह अवरुद्ध हो जाने पर कालान्तर में उसकी निर्मल धारा चुक जाती है। उसमें अंधविश्वास की कीचड़ शेष रहती है। इन बाधाओं में उलझा हुआ व्यक्ति और समाज, दोनों अपने मार्ग से भटक जाते हैं। इसीलिए साहित्यकार व्यक्ति के 'स्व' को पुष्टकर उसे उसके प्रति जागरूक और आस्थावान् बनाता है। वह उसकी अंधानुकरण की प्रवृत्ति छुड़ाकर, उसे तर्क-दृष्टि दे, स्वाधीन बनाता है। इस प्रकार जीवन में 'सह-अस्तित्व' का संदेश तथा स्वतन्त्र दृष्टि पाकर, साहित्य की बदौलत पाठक के मन का संस्कार होता है। पाठक साहित्य के अध्ययन के उपरांत अपने आप को कुछ बदला हुआ, पहले से उठा हुआ पाता है।

साहित्य के अन्तर्गत व्यक्ति और समाज के परस्पर-निर्भर संबंध को हृदयंगम कर लेने के उपरान्त (सामाजिक) उपन्यास के संदर्भ में जीवन-चित्रण विचारणीय है। उपन्यासकार पात्र और परिस्थिति के योग से अनुभूत जीवन को कथात्मक अभिव्यक्ति देता है। वह मानव-चरित्र की

सहज दुर्बलताओं को प्रत्यक्ष करते हुए, उसके तल में निहित निराली क्षमताओं को भी उभार कर सामने लाता है। यह तथ्य प्रेमचन्द की उपन्यास संबंधी परिभाषा के सूक्ष्म विवेचन से स्पष्ट हो जायगा। प्रेमचन्द लिखते हैं—"मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[1] मनुष्य के चरित्र के मूल में उसका व्यक्तित्व या आपा रहता है। आपा मनुष्य को व्यक्ति बनाता है, उसे विशिष्टता प्रदान करता है, अन्यथा वह एक चेतन पुतला-मात्र बनकर रह जाएगा। मनुष्य का आपा या आत्म-तत्त्व प्रतिकूल परिस्थितियों में सकुच-सिमट कर अपनी रक्षा करता है और अनुकूल परिस्थितियों में प्रसारित होकर निज की अधिकाधिक अभिव्यक्ति करता है। ये परस्पर विरोधी दीख पड़ने वाली बातें उद्देश्य में एक हैं। इनका उद्देश्य है व्यक्ति के अस्तित्व को सुरक्षित रखते हुए उसे जगत् में अपनी सार्थकता प्रमाणित करने का अवसर देना। व्यक्ति का आपा उसके पैतृक संस्कारों (हिन्दू-दर्शन के अनुसार पूर्वजन्मों के संस्कार भी व्यक्ति का व्यक्तित्व-निर्माण करने में सहायक होते हैं। प्रेमचन्द ने 'कायाकल्प' उपन्यास में देवप्रिया तथा महेन्द्र के विभिन्न जन्मों की कथा प्रस्तुत कर इस प्रभाव की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है) तथा उसकी सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग व्यक्तित्व है। मनुष्य के व्यक्तित्व का उद्घाटन लेखक उपन्यास में जिस विधि से करता है, उस प्रक्रिया को चरित्र-चित्रण की संज्ञा दी जाती है।

उपन्यासकार चरित्र-चित्रण करते समय पात्र-विशेष के चरित्र पर 'प्रकाश' डालता है और उसके 'रहस्यों' को खोलता है। इस विधि में पात्र का आपा सामाजिक मंच पर गतिशील होता है। पात्र के अन्त:करण का उद्घाटन करने के लिए उपन्यासकार उसकी 'कथनी' से ही संतोष न कर के उसकी 'करनी' को भी सामने लाता है। पात्र के वचन और कर्म से उसके मन की संगति-विसंगति को भी उपन्यासकार दर्शाता है। पात्र के इस त्रिमुखी उद्घाटन के लिए उपन्यासकार उसे विभिन्न परिस्थितियों के बीच से गुजारता है। उपन्यास में, परिस्थितियों में पड़ कर पात्र अपने

---

१. 'कुछ विचार', पृ० ४७ ('उपन्यास' शीर्षक निबन्ध से)।

विभिन्न पक्षों का परिचय देता है और उसकी चारित्रिक विशेषताओं के फलस्वरूप घटनाओं का विकास होता है। इस प्रकार घटना और चरित्र के पारस्परिक घात-प्रतिघात के परिणामस्वरूप उपन्यास की कथा का विकास होता है।

प्रेमचन्द की उपन्यास की परिभाषा में 'चित्र' शब्द विशेष महत्त्व का प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ जीवन की 'प्रतिकृति' नहीं, 'अनुकृति' है। पात्रों के चरित्र के चित्र प्रस्तुत करते समय उपन्यासकार जीवन-दृश्यावली से कुछ दृश्य चुनकर उपन्यास में संकलित करता है। जीवन-दृश्यों का यह चयन, संकलन उपन्यासकार अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के अनुसार करता है और चुने हुए दृश्यों को अपनी अनुभूति एवं कला के रंगों से सजा-सँवार कर 'चित्र' का रूप प्रदान करता है। 'चित्र' शब्द द्वारा जीवन-दृश्यों के चयन, परिवर्धन के द्योतन के साथ उपन्यास में निहित एक व्यवस्था का बोध भी होता है। उपन्यासकार इन चित्रों को एक सुयोजित क्रम में पिरोता है और ये सब उपन्यास के सुनिश्चित 'अन्त' की ओर उन्मुख होते हैं। इस बात को प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास की मुख्य कथा के उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। इस कथा का 'अन्त' है, मरते समय होरी की गोदान संबंधी असमर्थता।[१] जब इस कथा का अन्त है, तो उसका आरम्भ भी होगा। कथा का आरम्भ है—दरिद्र होरी की गोप्राप्ति की इच्छा।[२] आदि और अन्त के छोरों के मध्य, कथा का मध्य निहित है। इस कथा के मध्य के विकास में होरी की गोप्राप्ति की दिशा में गतिविधि तथा उसकी सफलता-असफलता का वृत्त है। अतः प्रेमचन्द की उपन्यास विषयक परिभाषा में 'चित्र' का अर्थ है—आदि, मध्य और अन्त की कड़ियों में बंधे हुए जीवन का किसी समस्या या चरित्र के अन्तर्गत कलात्मक उद्घाटन।

---

१. 'गोदान' के अन्त में पृ० सं० ३६५ की ये पंक्तियाँ द्रटव्य हैं :—'धनिया यंत्र की भाँति उठी, आज जो सुतली वेची थी उस के बीस आने पैसे लायी और पति के ठंडे हाथ में रख कर सामने खड़े दातादीन से बोली—महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इन का गोदान है।'

२. 'गोदान' के प्रारम्भ में, दूसरे पृ० की ये पंक्तियाँ देखिए :—'होरी कदम बढ़ाये चला जाता था। पगडंडी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरयाली देखकर उसने मन में कहा—भगवान कहीं गौं से बरखा कर दें और डांडी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा।...'

सामाजिक उपन्यास और जीवन की आलोचना

कहा जा चुका है कि उपन्यासकार मानव-चरित्र की दुर्बलताओं के साथ उसकी क्षमताओं को भी प्रस्तुत करता है। इस तथ्य को भली-भाँति स्पष्ट करने के लिए उपन्यास या साहित्य की प्रवृत्ति विचारणीय है। प्रेमचन्द ने अंग्रेजी कवि-आलोचक मैथ्यू आर्नल्ड की काव्य (साहित्य) संबंधी धारणा स्वीकार करते हुए साहित्य का लक्षण इस प्रकार किया है—"साहित्य की बहुत सी परिभाषायें दी गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है।"[१] आलोचना का शब्दार्थ है, 'देखना।' आलोचक साहित्यकार का यह देखना साभिप्राय है; यह तो जीवन की गति को स्वाभाविक बनाने, मनुष्य की मति को स्वाधीन करने एवं उसके संकल्प का संस्कार करने वाले निरीक्षक-निर्माता का देखना है। 'आलोचना-विधि' के अन्तर्गत परस्पर गुथी हुई निम्नलिखित तीन स्थितियाँ दृष्टव्य हैं :—

१. अनुभूत जीवन का यथासंभव सही अंकन।

२. वस्तुस्थिति का विश्लेषण।

३. निष्कर्ष, तथा स्थिति में निहित संभावनाओं का चित्रण।

इन तीन स्थितियों को इस प्रकार रख सकते हैं कि 'जीवन की आलोचना' में साहित्यकार बताता है—१. (जीवन) जैसा है, २. (समाधान करता है) क्यों ऐसा है ? और ३. (कल्पना करता है कि इस के अभाव क्योंकर दूर हों और यह) फिर कैसा हो ?

वास्तव में, इस प्रक्रिया के मुख्य पक्ष दो ही हैं—जीवन 'जैसा है' और 'जैसा होना चाहिए।' जीवन 'क्यों ऐसा है' (वस्तुस्थिति का विश्लेषण) यह सूत्र इन दोनों पक्षों के बीच की कड़ी है। यह कड़ी पहली स्थिति से दूसरी स्थिति तक साहित्यकार को पहुँचाने में अदृश्य रूप से कार्य करती है। साहित्य के इन दो पक्षों में से पहले में, साहित्यकार जीवन का अनुकरण और दूसरे में, उसका मार्ग-दर्शन करता है। इन्हें हम क्रमशः यथार्थवाद तथा आदर्शवाद की संज्ञा दे सकते हैं।

यथार्थवाद जीवन संबंधी विशिष्ट दृष्टि है। इस दृष्टि में तटस्थता तथा वैज्ञानिकता की प्रधानता रहती है। तटस्थता में वस्तुस्थिति को सही-

---

१. 'कुछ विचार, पृ० ३।

सही समझने और उस पर द्रष्टा की, निज की, भावनाओं के आरोप से बचने का प्रयास रहता है। तटस्थता, यथार्थवादी का मानसिक अनुशासन और वैज्ञानिकता, उसका साधन है। वैज्ञानिकता में विषय का विधिवत् विश्लेषण और निष्कर्ष-आकलन है। वैज्ञानिक विधि प्राप्य तथ्यों पर 'क्यों और कैसे' के प्रश्न-चिह्न लगाकर उनके पारस्परिक संबंध खोज कर, उन के निहितार्थ को पढ़ती है।

यथार्थवादी कलाकार गोचर वस्तु-जगत् को अपने अध्ययन और चित्रण का विषय बनाता है। जो कुछ उसने देखा, सुना और अनुभव किया है, उसी को अपने ज्ञान की चरम सीमा मानकर वह रचना-क्षेत्र में सृजन करने चलता है। जो अनुभवगम्य है, वही ग्राह्य होने के कारण वह काल की दृष्टि से भी तात्कालिक स्थिति को अधिक महत्त्व देता है। वर्तमान पर उसका विशेष ध्यान रहता है, उसकी गति को समझने में वह संलग्न रहता है। विगत की गौरव-गाथा और भविष्य के सुनहरे स्वप्न उसे आकृष्ट नहीं करते। वह ऐतिहासिक विकास-क्रम के परिप्रेक्ष्य में वस्तुस्थिति का मूल्यांकन करना चाहता है किन्तु परम्परा उसे मोहित नहीं कर पाती। यथार्थवादी कलाकार अपना वर्ण्यविषय वस्तु-जगत् को बनाता है और अपनी संवेदना को उससे प्राप्त अनुभवों पर ही निर्भर रखता है। इसका अर्थ यह नहीं कि यथार्थवादी वस्तु-जगत् की प्रतिकृति प्रस्तुत करता है। तात्पर्य केवल इतना है कि उस की रचना-प्रेरणा के मूल में इन्द्रियसुलभ अनुभव रहता है, वस्तु से इतर किसी कल्पना या भावना को वह स्वीकार नहीं करता। अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर वह जीवन-जगत् संबंधी एक धारणा बनाता है और इस धारणा या चेतना के माध्यम से वह जीवन का सूक्ष्म पुनरावलोकन कर के उसके विविध अवयवों के आन्तरिक संबंधों को स्पष्ट करता है। फिर वह ऊपर-ऊपर से अव्यवस्थित और लक्ष्यहीन दीख पड़ने वाले इस जीवन को रचना में अपनी अन्तर्दृष्टि से एक व्यवस्था, एक दिशा देता है। भौतिक विज्ञान, जीव-विज्ञान, समाज-शास्त्र तथा मनोविज्ञान के अध्ययन ने यथार्थवादी कलाकार को अधिकाधिक आत्म-निर्भर बनाया है।

यथार्थवाद वस्तु और वर्तमान को महत्त्व देने के कारण व्यक्ति की समस्याओं को समुचित सहानुभूतिपूर्वक उभारता है। व्यष्टि के नाते ही वह समष्टि की आवश्यकता अनुभव करता है। व्यष्टि को गौण मान कर,

समष्टि-रक्षा की कल्पना उसे ग्राह्य नहीं है। ऐसी कल्पना या आदर्श को वह अस्वीकार करता है। प्रत्यक्ष से परे परलोक, आध्यात्मिकता, ईश्वर आदि संबंधी धारणाएँ उसके लिए मात्र मन-गढ़ंत हैं।

यथार्थवादी की असंलग्न सूक्ष्म दृष्टि अपनी विवरण बहुलता से विषय का सटीक चित्र प्रस्तुत करती है। उसकी भाषा यथार्थ के निकट रहने का पूर्ण प्रयत्न करती है, उसमें अलंकरण का आग्रह नहीं रहता। इसी विशेषता को दृष्टि में रखते हुए यथार्थवाद की परिभाषा इस प्रकार की गई है—यथार्थवाद साहित्य की वह वृत्ति है जो यथासाध्य ईमानदारी से जीवन का चित्रण और प्रकृति के सभी अंगों का अंकन करती है। यथार्थवाद सौन्दर्य-सृष्टि के लिए यथार्थ का आदर्शीकरण नहीं करता, न अभिव्यक्ति को सँवारता है और न लोकातीत विषयों को प्रस्तुत करता है।[१]

यथार्थवादी की दृष्टि 'प्रस्तुत' पर ही केन्द्रित होने के कारण वह कभी-कभी भावी संभावनाओं को ओझल कर देती है। फलतः यथार्थवादी वस्तु-स्थिति से निराश होकर, आवेगवश जीवन के कुरूप के चित्रण में विशेष रुचि भी लेने लगता है। इसीलिए, माना गया है कि यथार्थवादी, १. जान-बूझकर अपना विषय सुन्दर और मधुर से ग्रहण न करके विशेष रूप से भद्दी वस्तुओं का वर्णन करता है और अरुचिकर विवरण प्रस्तुत करता है। २. वह वर्गगत पात्रों का नहीं, व्यक्तियों का चित्रण करता है। ३. वह तथ्यों को यथावत् प्रस्तुत करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।[२]

यथार्थवाद जीवन का वस्तुपरक चित्रण करके उसकी असंतोषजनक दशा के प्रति पाठकों में बेचैनी जगाता है। ऐसे जीवन को रचनात्मक दिशा और व्यवस्था प्रदान करने का बीड़ा आदर्शवाद उठाता है। आदर्शवादी इस प्रत्यक्ष जगत् के पीछे एक अदृश्य संचालक सत्ता का दर्शन करता है। उसके अनुसार यह बिखरा हुआ, विविध नामों एवं रूपों से युक्त वस्तुजगत् सर्वव्यापी आत्म-तत्त्व का प्रतिबिम्ब-मात्र है। वह वस्तुजगत् की विसंगतियों और विरूपताओं से कुंठित और कटु होकर नहीं रह जाता, वरन् उसकी अनेकताओं के मूल में निहित एकता के सूत्र को खोजकर भावी आशा का

---

१. कासेल्स एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ लिट्रेचर खंड १, पृ० ४७२। संपादक—एस० एच० स्टीनवर्ग।

२. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (खंड १६), पृ० १०।

सन्देश प्राप्त करता है। उसका आशा और उद्योग का सन्देश व्यक्ति को आत्म-रति से छुटकारा दिलाकर समष्टि-हित में रुचि लेना सिखाता है। स्वार्थी व्यक्ति का सामाजिक धारा से सामंजस्य स्थापित करने के लिए, वह उसके हृदय की शरण लेता है; वह अनुकूल परिस्थितियाँ जुटाकर उसके हृदय-परिवर्तन की सम्भावना प्रस्तुत करता है। आदर्शवादी दृष्टि-कोण जीवन के अवसाद को अन्तिम सत्य के रूप में स्वीकार नहीं करता, उसकी आशा उसे स्थिति को सुधारने-सँवारने की अथक प्रेरणा देती रहती है। किन्तु आदर्शवादी कलाकार के अधिक कल्पनाप्रिय हो जाने पर उसकी कला में कृत्रिम समाधान पग-पग पर उभर कर कला के स्वाभाविक प्रभाव को नष्ट कर देते हैं। अतः सामाजिक उपन्यासकार जीवन का चित्रण करते समय अपने संस्कार एवं रुचि के अनुसार उसके यथार्थ और आदर्श रूपों को उभारता है।

सामाजिक (नाटकीय) उपन्यास

सामाजिक उपन्यास की विशेषताओं के अनुरूप उसका विशिष्ट शिल्प होता है। उसकी शिल्प-विधि समझने के लिए उपन्यास की अन्य शिल्प-विधियाँ भी यहाँ उल्लेखनीय है। एडविन म्योर ने गठन की दृष्टि से मूलतः तीन प्रकार के उपन्यास स्वीकार किये हैं। ये हैं—घटना-प्रधान उपन्यास (नॉवेल ऑफ़ एक्शन), चरित्र-प्रधान उपन्यास (नॉवेल ऑफ़ कैरेक्टर) तथा नाटकीय उपन्यास (द ड्रामेटिक नॉवेल)।[1] कथा-साहित्य में घटना-प्रधान उपन्यासों की संख्या अधिक रहती है। इनका विषय जोखिम, साहस अथवा अपराध होता है। इन कथाओं में सामान्य सभ्य जीवन से इतर जीवन का चित्रण रहता है। साहसिक उपन्यास में साधारण जीवन की सीमाओं से ऊपर उठकर किसी कल्पना-लोक में विचरने की प्रवृत्ति रहती है। यह पाठकों के विवेक की अपेक्षा उनकी कामनाओं को अधिक तुष्ट करती है। यह उपन्यास हमारी इस कामना को चरितार्थ करता है कि "हम जोखिम उठायें और फिर भी हमारा बाल बाँका न हो।" इसमें दिखाया जाता है कि पात्र कैसे-कैसे अभूतपूर्व कार्य अद्भुत

---

१. इस प्रसंग में 'द स्ट्रक्चर ऑफ़ द नावेल' में संकलित एडविन म्योर के प्रथम चार व्याख्यान पठनीय हैं।

रीति से कर गुजरते हैं। वे स्थिति को उलट-पुलट कर, अनेक विधि-विधानों का यथासाध्य उल्लंघन करके भी उनके अनिवार्य परिणाम से बच निकलते हैं। ऐसे उपन्यास में युद्ध अथवा संघर्ष के उद्देश्यों को स्पष्ट करना लेखक का लक्ष्य नहीं रहता; वह जोखिम भरे संघर्ष के चमत्कारों को प्रस्तुत करने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझता है। घटना-प्रधान उपन्यास में वैचित्र्य या चमत्कार परिस्थितियों का रहता है। ये परिस्थितियाँ हमारी कामना की उड़ान की देन हैं। इसीलिए ये पात्रों के चरित्र-तत्त्व से असंबद्ध रहती हैं। पात्र और परिस्थिति का परस्पर समुचित घात-प्रतिघात न होने के कारण ऐसे उपन्यासो की कथा में जीवन का-सा स्वाभाविक विकास नहीं आ पाता। इस स्वाभाविकता के अभाव में घटना-प्रधान उपन्यास की कथा को विशृंखल बिन्दु-रेखा की उपमा दी जा सकती है। ऐसे उपन्यासों का, मानव-चरित्र-चित्रण से शून्य होने के कारण, साहित्यिक मूल्य स्वीकार करना संभव नहीं है।

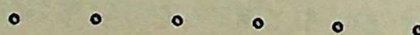
चरित्र-प्रधान उपन्यास में पात्रों के चरित्र या मानस की अभिव्यक्ति उनके चिन्तन, कथन के अतिरिक्त आनुषंगिक रूप से घटनाओं द्वारा होती है। घटनाओं का स्वतंत्र महत्त्व न होने के कारण इनका क्रम-बद्ध होना आवश्यक नहीं है, और न कोई कथानक या 'कार्य' ही उपन्यास में अपेक्षित है। यहाँ पात्र समाज-धारा से अपना सामंजस्य स्थापित करने की चिन्ता नहीं करते। वे समाज से कट कर, उससे विद्रोह करके आत्माभिव्यक्ति-मात्र में रत रहते हैं। पात्र नर्तक-जैसे हैं, जिन पर विविध कोणों से रंग-बिरंगी रोशनी डाल कर उनकी कला को अधिकाधिक उद्घाटित किया जाता है। पात्र वही हैं, उनका चरित्र स्थिर है। केवल उन्हें उद्घाटित करने वाली परिस्थितियाँ बदलती चलती हैं।

नाटकीय उपन्यास का शिल्प सामाजिक उपन्यास के उपयुक्त है। सामाजिक उपन्यास में व्यक्ति और समाज के परस्पर सामंजस्य का प्रश्न सर्वोपरि महत्त्व का है। उसमें पात्र स्वयं को समाज के अनुकूल बनाता है। यदि उसे समाज की धारा अनुपयुक्त जान पड़ती है तो उस धारा को उपयुक्त दिशा में मोड़ने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति तथा समाज के सामंजस्य की खोज तथा सामाजिक समस्याओं के चित्रण, विश्लेषण के लिए उपन्यास में परिस्थिति-विकास अपेक्षित है। इसलिए नाटकीय उपन्यास परिस्थिति-विकास या कथा पर मुख्यतः निर्भर रहता है। उसकी कथा का

'अन्त' मूल समस्या का समाधान या पूर्ण रूप प्रस्तुत करता है। 'अन्त' पर कथा का विशिष्ट कार्य पूर्ण हो जाता है और इसके बाद घटनावली आगे नहीं बढ़ाई जा सकती। यह 'अन्त' कथा की समाप्ति का सूचक ही नहीं, प्रत्युत् उसकी अन्तिम प्रकाशच्छटा है। यह स्थल उपन्यास के परिस्थिति-विकास तथा पात्रों के उद्‌घाटन का चरम बिन्दु है।

नाटकीय उपन्यास में कथा की गति रहने के कारण उसमें नाटक के गुण स्वतः आ जाते हैं। उसके देश-काल के सीमित रंगस्थल पर परिस्थितियों का संघर्ष विधिवत् विकसित होकर सुनिश्चित अन्त तक पहुँच सकता है। यह रंगस्थल शेष संसार से छिन्न रहकर, अपने एक कोने में संकुल सामाजिक जीवन को प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास की कथा समाज रूपी वृत्त के अनेक बिन्दुओं से निःसृत होकर रंग-केन्द्र के प्रति अग्रसर होती है और अन्ततः एक पुष्ट गतिशील धारा का रूप धारण कर लेती है।

नाटकीय उपन्यास काल-सापेक्ष है, उसमें कथा की गति है। चरित्र-प्रधान उपन्यास देश-सापेक्ष है, उसमें चरित्र स्थिर हैं। नाटकीय उपन्यास का शिल्प यदि पड़ी लकीर है, तो चरित्र-प्रधान उपन्यास की प्रवृत्ति खड़ी लकीर जैसी है। हमारे दैनिक जीवन में देश तथा काल के, दोनों, तत्त्व साथ रहते हैं। हम रहते देश में और जीते कालावधि में हैं। इस जीवन को कला-कृति में ढालते समय कलाकार उसके दोनों पक्षों, देश और काल, में से किसी एक को ही उभार पाता है। कृति में कोई एक तत्त्व ही प्रधान रहने के कारण, उसमें यथार्थ जीवन की अपेक्षा अभिव्यक्ति-क्षमता अधिक आ जाती है। उदाहरणार्थ, मूर्तिकला का क्षेत्र देश है और संगीत का काल। मूर्ति से काल-तत्त्व और संगीत से देश-तत्त्व वियुक्त करके कलाकार इन्हें साधारण जीवन की सीमाओं से ऊपर उठाकर सार्वभौम महत्त्व की वस्तु बनाता है। कुछ इसी प्रकार, चरित्र-प्रधान और नाटकीय उपन्यासों से उपन्यासकार क्रमशः काल तथा देश के तत्त्वों को वियुक्त करके उन्हें साधारण जीवन से अधिक सार्थक और सशक्त बनाता है।



विजयमोहिनी कौल एम० ए०
(अनुसंधित्सु)

आहटें

दिल के दरीचों पर
दरो दीवारों पर
आहटें-सिर्फ आहटें।

सुलगती चाह की अनबुझी धड़कन
राख के बोझों में दबी
घुट चुकी, कभी की घुट चुकी,

दूर, बहुत दूर तक
पथरा के रह गई—उभरती बेचैनियाँ
कसमसा के लुट गईं चाहतें
आहटें-सिर्फ आहटें।

आहटें, खुली पलकों से टकरा कर
जम जाती हैं
ध्वनि के पर्त-कानों के दायरों में
घुमड़-घुमड़ कर छटपटाते हैं,
एक क्षण के लिए

चिर-परिचित परिवेश
हो गया है
अजनबी सा।
शहर के जंगल में भटक कर,
पीछे छूट गई राहतें
आहटें-सिर्फ आहटें

दिल के दरीचों पर
दरो-दीवारों पर,
सिर्फ, आहटें ही आहटें।

० ० ० ० ० ०

शैतान की माया

शैतान ने खुदा के बन्दे को शहद की बूंद दिखाई। लोभ में आकर उसने उसे घर में रख लिया। उस पर मक्खी आई, उसे टिड्डे ने खाया, टिड्डे को चूहे ने मारा, उसे बिल्ली खा गई, कुत्ते ने बिल्ली का पीछा किया। फिर हलवाई ने कुत्ते को मारा। कुत्ते के मालिक ने आकर हलवाई को मारा। खुदा के बन्दों में लड़ाई छिड़ गई। केवल एक शहद की बूंद के कारण, जिसे पहले ही मक्खी खा चुकी थी।

* * *

एक कवि और पंडितराज जगन्नाथ

एक कवि को अपनी कविताएँ सुनाने की लत थी। एक बार वह पंडितराज जगन्नाथ के पास गया और सुनने के लिए अनुरोध करने लगा। पंडितराज ने कहा "हे कवि यदि तुम्हारी कविता अंगूर के समान बाहर-भीतर रस से परिपूर्ण है, तो अवश्य सुनाओ अन्यथा उसे उसी प्रकार अपने पास गोपनीय रखो—जैसे व्यक्ति अपने पाप को रखता है।"

कवि महोदय चुपचाप उठकर चले गए।

डा० रमेशकुमार शर्मा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर,

१९४२ के कुछ संस्मरण

उन दिनों मैं आगरा कालिज में पढ़ता था, ९ अगस्त १९४२ को आन्दोलन आरम्भ होते ही हम लोगों ने हड़ताल इत्यादि कार्य आरम्भ कर दिये। तोड़-फोड़ भी हुई। मुस्लिम-लीग तथा कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्यों ने आन्दोलन का विरोध किया, परन्तु फिर भी दिसम्बर १९४२ तक आगरा कालिज में हड़ताल रही, जो कि संभवत: देश में सब से लम्बी हड़ताल थी। आगरा कालिज की हड़ताल को जारी रखना एक प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था—और जब तक मेरे पूज्य पिता पं० श्रीराम शर्मा तथा उनके दल के सदस्य ७ दिसम्बर १९४२ को गिरफ्तार नहीं हुए यह हड़ताल चलती रही थी। हड़ताल के दूसरे तीसरे दिन विद्यार्थियों का एक बड़ा जलूस निकला, आगरे के हरीपर्वत थाने के पास पुलिस ने उसे रोक लिया और राजपूत कालिज की ओर जाने न दिया, ज़ोर का लाठी चार्ज हुआ, मैं तथा श्री बिसारिया आगे थे, इस कारण लाठियों से पिट कर गिर पड़े। साथियों ने घर पहुँचा दिया, मां तथा बहिनों ने हल्दी-चूना लगा कर खाट पर डाल दिया, अस्पताल में आन्दोलन-कारियों की देखभाल नहीं की जाती थी, उन दिनों।

तीन चार दिन बाद ताऊजी, पं० हरिशंकर शर्मा, के यहाँ से एक आवश्यक सन्देश आया और जब मैं वहाँ पहुँचा तो उनके मकान की ऊपरी मंजिल के एक कमरे में एक सज्जन से मिलने मुझे भेज दिया गया। खाकी

कपड़े पहिने, सफाचट मूँछों वाले उन सज्जन को अनायास मैं पहिचान न सका, क्षण भर बाद समझ पाया कि पिताजी ने अपनी फर्राटेदार मूछें साफ करके वेश बदला है। उन्हें किसी ने भी बिना मूँछों के नहीं देखा था, और इतना अधिक परिवर्तन उन में आ गया था कि अगले चार महीनों में, अनेक बार पुलिस वालों के साथ बात करने पर भी वे उन्हें पहिचान न सके।

बम्बई में कांग्रेस की मीटिंग के तुरन्त बाद सारे नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया था, पिताजी वेश बदल कर बच निकले थे। उन्हें युक्त-प्रान्त तथा मध्यप्रदेश के आन्दोलन का संचालक बनाया गया था। आगरा आकर उन्होंने अपने दल का संगठन किया और ध्वंसात्मक आन्दोलन आरम्भ हो गया। उनके दल में लगभग २० लोग थे, जिनमें प्रमुख थे, श्री बसन्तलाल झा, श्री गोपीनाथ शर्मा, प्रो० रामशरण सिंह जी, श्री विजयशरण सिंह चौधरी, श्री राधेमोहन अग्रवाल, श्री पीताम्बर पंत (आगे चल कर भारत सरकार के योजना-आयोग के सदस्य) श्री मनोहरलाल इत्यादि। डा० केसकर (बाद में भारत सरकार के विदेश विभाग के मंत्री) भी उनके साथ थे। मध्य प्रदेश में डा० निरंजन सिंह जी ने ध्वंसात्मक आन्दोलन का संगठन किया था। रेल की पटरियाँ उड़ाना, सरकारी दफ्तरों तथा स्टेशनों को जलाना, तथा अन्य ध्वंसात्मक कार्यों का कार्यक्रम चलता रहा, जिनमें व्यर्थ जन-हानि नहीं होने दी गई।

पिताजी के दल ने अनेक स्थानों पर अड्डे बनाए और अन्त में आगरा विश्वविद्यालय के पीछे एक आलू तथा प्याज़ सुखाने की फैक्ट्री में उनका दल रहने लगा। हम लोग बल्काबस्ती में रहते हैं। अपने घर से पिताजी के पास मैं रोज़ जाता था, सामान लाना ले जाना, कभी-कभी उनके लिए भोजन भी ले जाना, होता था। सारे शहर का चक्कर काट कर जाता था—और चार महीनों में पुलिस के रोज़ पीछा करने पर भी, किसी भी दिन पुलिस मेरे कारण दल के निवास तक नहीं पहुँच सकी। पिताजी के बड़े भाई स्व० पं० बालाप्रसाद शर्मा, उस कारखाने में मुनीम बन कर सामने ही बैठे रहते थे और लोगों को सचेत करते रहते थे। डाइनामाइट, बम, बारूद, पिस्तोल इत्यादि हथियारों को रखने का एक विचित्र प्रबन्ध किया था। कारखाने में दल के सदस्यो के कमरों के निकट ही एक गोदाम पर इम्पीरियल बैंक की सील लगी हुई थी, कुछ माल

गिरवी रख कर कर्ज लिया गया था—इस कारण। उस गोदाम में सारे हथियार इत्यादि रहते थे, सीलवन्द ताला ज्यों का त्यों रहता था। इसी कारण जब सब लोग गिरफ्तार हुए तो तलाशी में पुलिस ने बैंक की सील को नहीं तोड़ा और अधिकांश सामान साथ में नहीं पकड़ा गया।

१९४२ के आन्दोलन के विस्तृत संस्मरण पिताजी ने अपनी पुस्तक "संघर्ष और समीक्षा" में लिखे हैं, और वे लोक-विदित हैं। मैं उनके विस्तार में नहीं जाऊँगा। उन्हीं बातों का जिक्र करूँगा जिनका सम्बन्ध मुझ से है। १५ वर्ष की आयु में आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने वाला मैं देश का सबसे छोटा लड़का था। सिन्ध के श्री हेमू कलानी उन दिनों १६ वर्ष के थे—और उन्हें अंग्रेज सरकार की विशेष अदालत ने फांसी की सजा दे दी थी, मैं जीवित हूँ और स्वतंत्रता के आनन्द भोग रहा हूँ। जन-क्रान्तियों में यही होता है। शहीद प्राण दे देते हैं, जो वच जाते हैं वे सुख भोगते हैं। कुछ पिछलग्गू लोग शहीदों की जीवनी लिख-लिख कर जीवन-यापन करते हैं।

पिताजी के दल के साथ कार्य करने के अतिरिक्त आगरा कालिज की हड़ताल भी चलती रही और पढ़ना लिखना ठप्प हो गया। पुलिस को पता चल गया था कि पिताजी आन्दोलन का संचालन कर रहे हैं इस कारण बल्काबस्ती में हमारे मकान पर २४ घण्टे निगरानी रहती थी फिर भी हमारा आना जाना जारी रहता था।

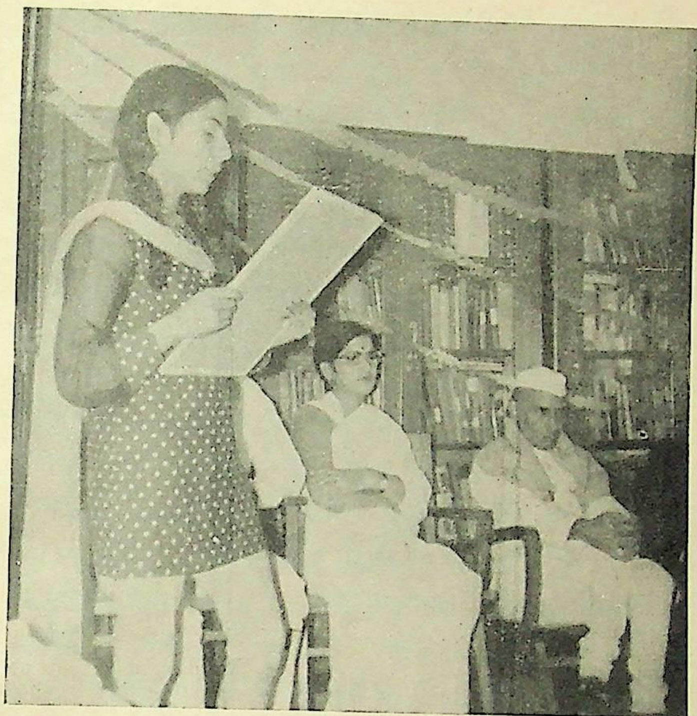
दो घटनाएं मुझे नहीं भूलतीं। भंगी के वेश में झाड़ू-डलिया लेकर पिताजी आगरा किले में गए थे। फौज का एक भारतीय कैप्टिन हमसे मिल गया था—मेगज़ीन को उड़ाने की योजना थी। देख-भाल करने के बाद, एक दूसरे अफसर ने इस कार्य के विरुद्ध राय दी, वैसे वह साथ देने को तैयार था। उसने वताया कि इतना गोलाबारूद, युद्ध-प्रयत्नों के लिए उस में जमा है कि उसे उड़ाने पर आधा किला, संभवतः ताजमहल और शहर का एक तिहाई भाग नष्ट हो जायगा। योजना त्याग दी गई। इसी प्रकार, एक दिन रात के दो बजे अमरीकन फौज (जिसका सब से बड़ा अड्डा आगरा में था) का एक यहूदी अफसर पिताजी से मिलने आया था, उसके साथ जिस योजना पर बात हुई थी वह अन्तर्राष्ट्रीय जासूसी की घटना होती, परन्तु उसके कुछ ही दिनों बाद पिताजी गिरफ्तार हो गए।

श्री लक्ष्मीनारायण पालीवाल दल की तरफ से दिल्ली भेजे गए,

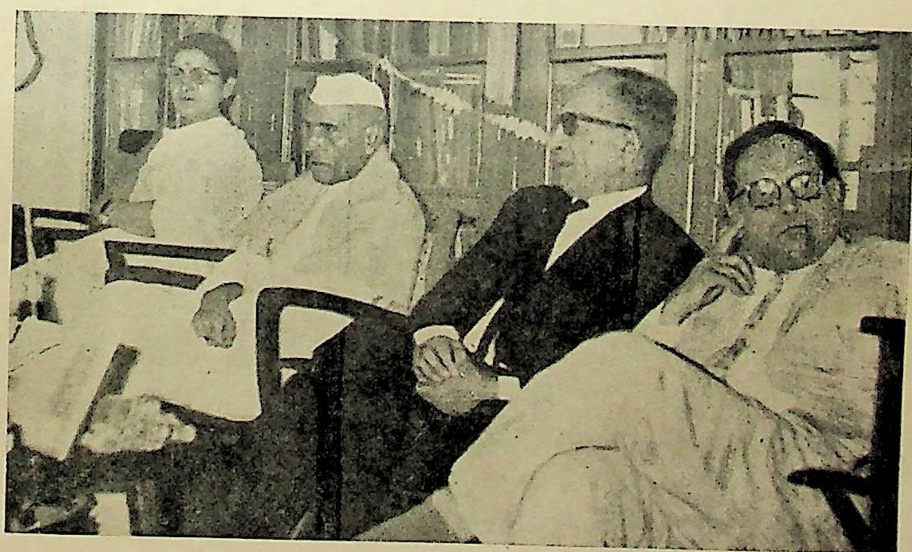
बमों के खोल लाने के लिए। लौटते समय वे राजामण्डी स्टेशन पर पकड़ लिए गए और उन्होंने पुलिस के एक चाँटे में सारा भेद खोल दिया। ७ दिसम्बर १९४२ को संध्या के समय पुलिस ने हमारा घर घेर लिया। सारा सामान, कागज़-पत्र, पुस्तकें निकाल-निकाल कर आँगन तथा सड़क पर फेंक दिए। रात के २ बजे तक तलाशी चलती रही। सभी सामान नष्ट-भ्रष्ट करके मुझे अपने साथ लेकर पुलिस चल दी। घर में, मेरी बड़ी बहिन (कमला शर्मा) दो छोटी बहिने (शारदा तथा सरोजिनी) माँ तथा तीन छोटे भाई (राकेश, दिनेश तथा व्रजेश) रह गए। लोहामण्डी थाने में एक कौने में मुझे बैठाया गया, चारों ओर पुलिस अफसर थे उन्होंने अपनी-अपनी टार्चो की रोशनी मेरे मुँह पर डाली और प्रश्न आरम्भ किए। पिताजी ने पुलिस 'इन्टेरोगेशन' के बारे में मुझे पहले ही सचेत कर दिया था। मुझे सिखाया था कि जिन बातों का पुलिस को पता हो या पता होने की सम्भावना हो, उन्हें स्वीकारना चाहिए क्योंकि झूठ बोलने से शक होता है। मैंने पुलिस को जो उत्तर दिए उनका सार था, 'मैं पढ़ता हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम। पिताजी फरार हैं, शायद आन्दोलन में कार्य कर रहे—हमें उनकी कोई खबर नहीं है। हमारी आर्थिक अवस्था भी खराब है, गाँव से कुछ अन्न इत्यादि आता है, और बैंक में जो है (मां के नाम) उस से कार्य चलता है।'

तलाशी में कुछ मिला नहीं था, इसलिए दूसरे दिन प्रातः दो चार चाँटे मार कर मुझे भगा दिया गया। घर आकर दल की खबर लेने गया तो वहाँ पुलिस का घेरा देखा। तब मालूम हुआ कि सारे लोग गिरफ्तार हो गए हैं। पिताजी, ताऊजी (पं० बालाप्रसाद शर्मा तथा पं० हरिशंकर शर्मा) मेरे एक चाचा (जगदीश शर्मा) सभी पकड़े गए हैं। गिरफ्तारी से पूर्व पिताजी दस दिनों तक ज्वर पीड़ित थे, अन्यथा खिड़की के साथ लगे पेड़ के सहारे भाग जाते। गिरफ्तारी के समय पिताजी को पुलिस ने बहुत मारा था—उनका एक कान फूट गया था।

एक रोचक बात यह हुई कि पिताजी की गिरफ्तारी से गेरुआ—वेश धारी साधू लोग बड़े प्रसन्न हुए। एक ध्वंसात्मक कार्य करने जाते समय दल के सदस्यों ने साधुओं का वेश बनाया था (वे कपड़े गिरफ्तारी के समय पकड़े भी गए थे) इस कारण तब से पुलिस को जो साधू मिलता था—उसे पकड़ कर खूब पीटा जाता था। पूछा जाता था "बता श्रीराम शर्मा कहां



विभागाध्यक्ष डा० शर्मा को ताम्रपत्र मिलने के अवसर पर किए गए समारोह में मंत्री इन्द्रजीत कौर अभिनन्दन पत्र पढ़ रही हैं ।



डा० शर्मा के अभिनन्दन समारोह में (बायें से) श्रीमती कौल, मुख्य अतिथि डा० ह० ला० शर्मा, उपकुलपति श्री नूरुद्दीन तथा विभागाध्यक्ष डा० रमेश शर्मा ।

छुपा है।" सारे साधू उन्हें गालियाँ देते थे। कहते थे "न जाने यह बदमाश कौन है, जिसके कारण साधुओं का जीना हराम हो गया है।" पिताजी की गिरफ्तारी हो जाने पर 'बाबा' लोगों ने चैन की साँस ली। गिरफ्तारी के समय दल के सदस्यों के पास कोई सामान बरामद नहीं हुआ, केवल आन्दोलन संचालन के लिए धनराशि तथा "आज़ाद हिन्दोस्तान" नामक ग़ैरकानूनी 'साइक्लोस्टाइल्ड' अखबार की कुछ प्रतियाँ मिलीं थी। उस अखबार को पिताजी चलाते थे—उसमें आन्दोलन के कार्यों की सूचनाएँ भी निकलती थीं।

उसके तीन चार दिन बाद वेश बदलकर मैं आलू-फैक्ट्री में गया और सारा गोला बारूद उठा कर घर ले आया। २०० के लगभग "डाइनामाइट स्टिक" रेल-पटरी उखाड़ने के औज़ार, हथियार तथा लगभग २० सेर बारूद थी। खुले आम, बिस्तर में बाँध कर, इक्के में रख कर घर ले आया। फिर हमने एक नया दल संगठित किया। उस में, भूदेव पालीवाल (आयु २०-२१ वर्ष) शीतल प्रसाद (२६ वर्ष) सूरजभान (३० वर्ष) बंगालीमल जैन (३० वर्ष) थे। साथ में मेरे दो मित्र, श्रीचन्द्र शर्मा तथा रामकृष्ण शर्मा (आजकल, मार्डन स्कूल नईदिल्ली में पढ़ाते हैं) भी थे, किन्तु इनका सम्पर्क मैंने दल के अन्य सदस्यों में नहीं कराया था। वास्तव में हम तीन लोग अलग से कार्य करते थे। इस दल की सहायता आगरा कालिज के रसायन विभाग के प्रोफेसर श्री जंगबहादुर झा (श्री बसन्तलाल झा के पूज्य पिता) करते थे। प्रोफेसर झा ने हमें घर में बम बनाना सिखाया। उनके घर उनकी अपनी प्रयोगशाला थी, उसमें बम बना कर वे हमें देते थे—और हम लोग उनका प्रयोग करते थे। आगरा की जेल की दीवार, राजामण्डी स्टेशन तथा एतमादपुर के पास झरना-पुल पर हमने बम लगाए। राजामण्डी वाला फटा नहीं।

मुझे याद है कि फेंकने पर फटने वाला तथा टाइम-बम, दोनों प्रकार के बम प्रो० झा (जन्हें मैं ताऊजी कहता था) हमसे बनवाते थे और बना कर देते थे। झा साहब तरल-स्वर्ण (चूड़ी पर लगाने का) पर शोध-कार्य कर रहे थे इस कारण घर पर उन्होंने प्रयोगशाला बनाई थी। उसीमें बम बनाए जाते थे। बहुधा चीनी के "जार" (इमर्तबान) का प्रयोग करते थे, जिनमें चूड़ीदार ढकना होता है।

एक बार जेल की दीवार की नाली में दो बम लगाने के लिए मैं

चला । दोनों हाथों में एक-एक बम था । धक्का लगते ही उनके फट जाने की आशंका थी, घर के बने थे । संध्या का समय था, मैंने चादर कन्धों पर डाली, बगल में बम लगाए—अपने दोनों ओर राम (रामकृष्ण शर्मा) तथा सिरिया (श्रीचन्द्र शर्मा) को किया, और चल पड़ा । राजामण्डी बाज़ार में पहुँचा तो सामने से एक बरात आ रही थी । उसकी भीड़ में फंस गया, धक्कम-धुक्का होने लगी । हम तीनों के चेहरे पीले पड़ गए, दिल की धड़कन, रेल के इंजिन के समान लगने लगी । राम तथा सिरिया मेरे चारों ओर घूम-घूम कर मुझे धक्कों से बचा रहे थे, किसी भी क्षण बमों के फटने का भय था । चीनी के इमर्तबान चिकने होते हैं—हाथों में पसीना आने के कारण फिसलने लगे । वे १० मिनट मुझे आज भी याद हैं । जब उन्हें पकड़े रहना असम्भव हो गया—तो मैं किसी प्रकार पेशाब के वहाने नाली पर बैठ गया । बमों को गोद में रखा, दोनों मित्र जैसे भीड़ से बचने के लिए मेरे पीछे खड़े मेरी रक्षा कर रहे थे । लोग 'बेशर्म लड़के' को निकट ही बैठा देख कर भौहें सिकोड़ कर निकल जाते थे । बारात निकल जाने पर हमने चैन की साँस ली । रात के आठ वजे बम फेंके—केवल एक फटा ।

ताऊजी की गिरफ्तारी से गाँव की खेती बरबाद हो गई थी । अन्न के लिए भी तरसना पड़ता था । पुलिस ने इतनी कड़ी निगरानी लगाई थी कि लोग हमारे घर आने में भी घबराते थे । पिताजी के एक घनिष्ट मित्र तो हमारी नमस्ते भी नहीं स्वीकारते थे । सब कहते थे शर्माजी को फाँसी होगी । मेरे दो भाई बीमार हुए और डाक्टरी सहायता के अभाव में, राकेश तथा दिनेश, चल बसे । तीसरा ब्रजेश भूख तथा दुर्बलता से बीमार रहने लगा । (बाद को उसकी मृत्यु भी हमारे जेल से छूटने के बाद ही हो गई ।) फिर भी आन्दोलन का कार्य जारी रहा । २६ जनवरी १६४३ को मरते हुए आन्दोलन को जीवित करने के लिए मेरी बड़ी बहिन (कमला शर्मा), श्री जगनप्रसाद रावत की पत्नी तथा पुत्री (सरोज) ने जुलूस निकाला—और गिरफ्तार हो गईं । बड़ी बहिन को ७ वर्ष की सज़ा हुई । वे आगरा तथा लखनऊ जेल में, श्रीमती सुचेता कृपलानी के साथ रहीं ।

इसी प्रकार फाकेमस्ती में आन्दोलन का कार्य चलता रहा । जुलाई १६४३ तक आते-आते हालत खराब होने लगी । भूदेव पालीवाल की हरकतें संदेहास्पद होने लगीं । उसे खाने-पीने का शौक था । ६ अगस्त १६४३ को आन्दोलन की वर्षी मनाने का निर्णय किया गया । एक जुलूस निकालने

तथा तीन बम-काण्ड करने का प्रयत्न था। भूदेव की हरकतों पर शक होने के कारण मैंने अपने घर से हथियार इत्यादि हटा दिये थे। बारूद को एक अन्धे कुएँ में डाल आया था।

२६ जुलाई १९४३ की शाम को दल की एक मीटिंग होनी थी। प्रातः जब मैं भोजन कर रहा था, सादा वेश में पुलिस के तीन आदमी आये और मुझे पकड़ कर ले गए। बाद को मालूम हुआ कि उसी दिन अन्य सारे लोग भी पकड़ लिए गए थे। आज तक हमें नहीं मालूम कि किसने पुलिस को सूचना दी। आगे की घटनाओं से अनुमान लगा कि संभवतः भूदेव ने लापरवाही के वड़बोलेपन में किसी के सामने भेद खोल दिया होगा। अस्तु।

सी० आइ० डी० के डी० एस० पी० चक्रवर्ती तथा इन्सपेक्टर रामप्रसाद पिताजी के मुकद्मे को चला रहे थे। आगरा षड़यंत्र केस (Pt. Shriram Sharma and others v/s king Emperor) चलाना था तथा उसे मध्यप्रदेश के ठाकुर निरंजन सिंह वाले केस से जोड़ना था। ७ दिसम्बर १९४२ को निर्दोष समझ कर मुझे छोड़ दिया था—इस कारण उन्हें झुझलाहट थी। मुझे आगरा कोतवाली की हवालात में रखा गया और पूछ-ताछ आरम्भ हुई। भूदेव कोतवाली में जनानी हवालात में रखा गया था। उसने दो दिन बाद सारा भेद खोल दिया। इकबाली बयान पर हस्ताक्षर कर दिए। मौज से कोतवाली में ही रहने लगा। सिनेमा देखता खाता-पीता, घूमता, किन्तु सर्वदा पुलिस की निगरानी में। शीतल, सूरज भान, बंगालीमल ने भी काफी मारपीट के बाद इकबाली बयान दे दिया। आगे चलकर सेशन्स-कोर्ट में इन तीनों ने अपना बयान बदल दिया—परन्तु उन्हें सात-सात वर्ष की कठिन कैद की सज़ा हो गई थी। भूदेव सेशन्स-कोर्ट में, अन्त तक सरकारी गवाह रहा। मजे की वात यह है कि स्वतंत्रता के बाद वे तीनों भूखे मरे—उन्होंने कुछ नहीं लिया, न उन्हें मिला और भूदेव Political Sufferer का प्रमाण-पत्र लेकर सरकारी सहायता पर विदेश गया और मौज कर रहा है। खैर।

पुलिस मुझसे निम्नलिखित वातें चाहती थी :—

१. हथियार इत्यादि जहाँ छिपाये हैं—उनको बरामद कराना।

२. इकबाली बयान पर हस्ताक्षर करना जिसमें यह कहा गया हो कि मेरे पिताजी तथा ठा० निरंजन सिंह आपस में मिलते थे और आन्दोलन

का कार्य चलाते थे। जिससे मध्यप्रदेश तथा युक्तप्रान्त दोनों के दलों का एक भारत व्यापी षडयंत्र केस चलाया जा सके।

३. मजिस्ट्रेट के सामने, भूदेव के समान, इकबाली बयान पर हस्ताक्षर।

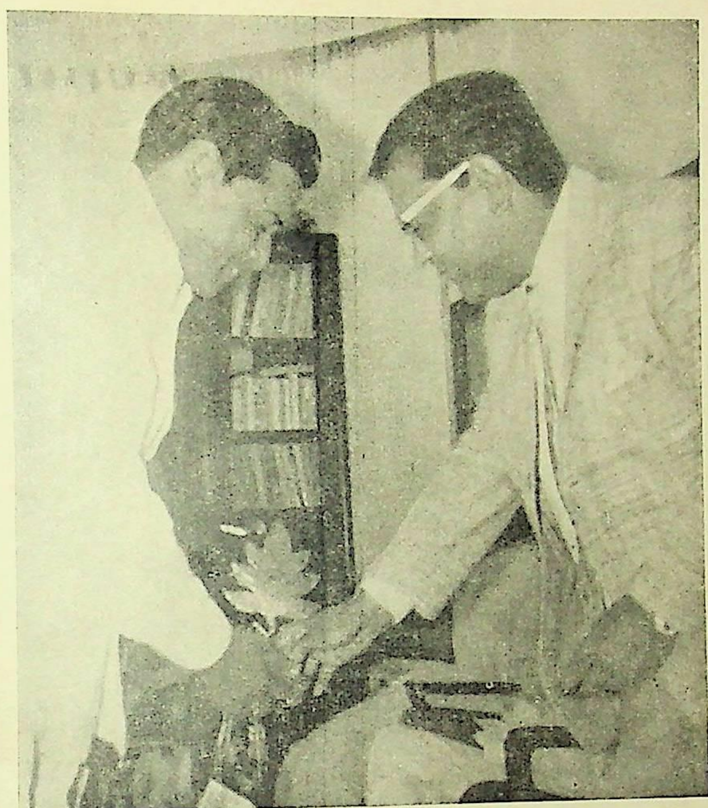
आरम्भ में मुझे लोभ दिखाया गया, फिर भय। पुलिस की गलती यह हो गई कि उसने मुझसे कहा कि पिताजी को फाँसी अवश्य लगेगी, यदि अपनी जान बचाना चाहता हूँ तो उनका कहा मान लूं। यदि उन्होंने यह कहा होता कि उनका कहा मानने से पिताजी की जान बच सकती है तो शायद मेरा साहस टूट जाता। मुझे कोतवाली हवालात में ५६ (उनसठ) दिन रखा गया। आरम्भ के एक सप्ताह को छोड़कर जो यातनाएं दी गईं वे आज भी याद हैं। "संघर्ष और समीक्षा" में प्रकाशित हैं। बाद में गान्धीजी ने कहा था कि इस प्रकार की यातना उस आयु में, उनकी याद में किसी बालक को नहीं दी गई। मैं नीचे कुछ उदाहरण दे रहा हूँ।

१. पचास दिनों तक, दोनों समय, मुझे केवल आधा पाव भुना चना और एक छटाँक गुड़ खाने को दिया गया।

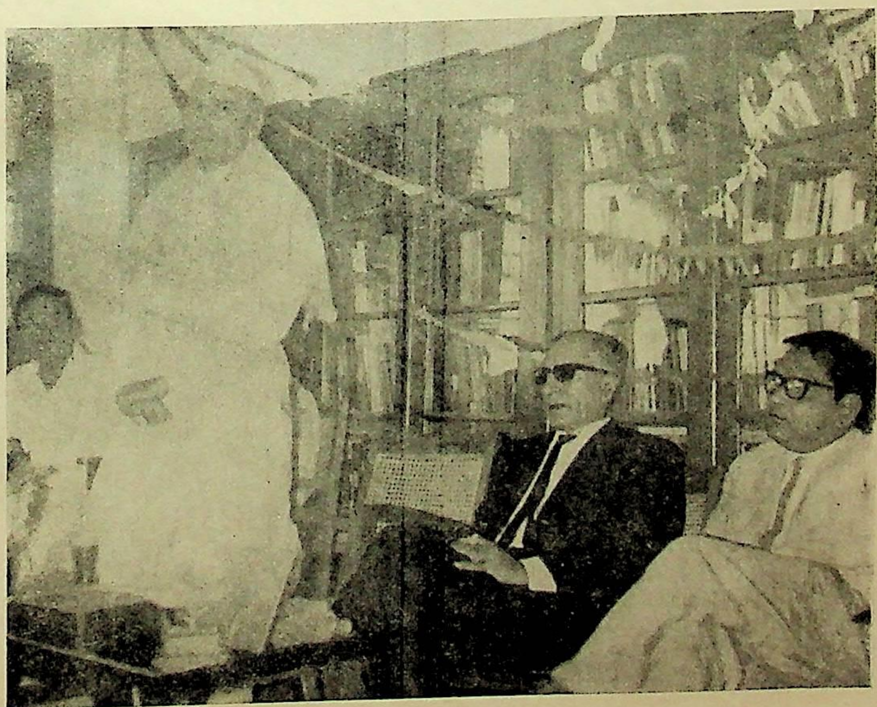
२. आगरा की जुलाई-अगस्त की गर्मी में स्नान एक बार भी नहीं। दिन रात दो सौ वाट का बल्ब जलता रहता था। हवालात के नंगे फर्श पर सोना।

३. बर्फ की सिलों पर सुलाना, उल्टा लटका देना, नाखूनों में सुई चुभौना। डण्डों, घूँसों से अनवरत मारना—जब तब कि मूर्छा न आ जाय।

४. खाट से बाँध कर उल्टा लटका देना। जमीन पर गिरा कर पैर के तलबों में डण्डे मारना। गाली-गलोज तो सामान्य बात थी। कथा लम्बी है, और विस्तार का अवकाश नहीं है। पचास दिनों के बाद मैं हमेशा लगभग अर्ध-मूर्छित अवस्था में रहता था। दोनों कलाइयाँ, दायें कूल्हे का जोड़ तथा दोनों टखने लगभग टूट चुके थे। ज्वर रहने लगा था। खाँसने में थूक के साथ रक्त आता था। केवल एक जिद सर्वदा दिमाग में घूमती रहती थी—पुलिस वालों की बात नहीं माननी है। एक मानसिक कुहासे में मैं जीवित रहता था। पचास-इक्यावन दिनों बाद मनोबल टूट सा गया। एक फूटे कुल्हड़ के टुकड़े से हवालात के कोने में तारीखें लिखता जाता था, जिससे समय का अनुमान रहे। वहीं एक कौने में लिख दिया था "मैं पं० श्रीराम शर्मा का पुत्र रमेश हूँ। २६ जुलाई को यहाँ आया हूँ। जिस दिन



परिषद् के उपसभापति डा० खान, डा० शर्मा को शील्ड भेंट कर रहे हैं।



मुख्य अतिथि डा० हरवंशलाल शर्मा द्वारा भाषण।

तारीखें समाप्त हो जाय, उसी दिन या तो मर गया हूँ या जेल चला गया हूँ। मेरे बाद आने वाला कोई कैदी अगर मेरे पिता से जेल में मिले तो उन्हें बता दे कि मैंने उनके रक्त के सम्मान की रक्षा की है।" आश्चर्य की बात है कि मेरे जेल चले जाने के बाद एक सज्जन ने यह सन्देश पिताजी को आगरा सेन्ट्रल जेल में दिया भी था, परन्तु पुलिसवालों ने यह अफवाह फैला दी थी कि मैं सरकारी गवाह बन गया हूँ।

५. इक्यावन या बावनवे दिन जब मेरी हालत बहुत खराब हो गई तो पुलिस ने तय किया कि मूर्छित सी अवस्था में मुझ से बयान पर हस्ताक्षर करा लिए जायँ। यदि भगवान की कृपा न हुई होती तो शायद मैं दूसरे दिन प्रातः हस्ताक्षर कर भी देता—क्योंकि शरीर तथा मन का बल टूट चुका था। आज आराम की ज़िन्दगी बसर करते हुए सोचता हूँ कि मैंने कैसे वे कष्ट सहे ? आज यदि वैसा ही अवसर आये तो शायद मैं टूट जाऊँगा—नहीं सह सकूँगा वे यातनाएँ। हाँ इतना लाभ मुझे उस यत्रंणा-भोग से हुआ है, कि कष्ट भोगने के कारण मैं औरों के कष्ट दुख समझता हूँ। दूसरों के दुख मुझ से सहे नहीं जाते। यहाँ तक कि सिनेमा-उपन्यास की करुण घटनाएँ भी मुझे सहन नहीं होतीं। इसीलिए सिनेमा-नाटक नहीं देखता हूँ। हुआ यह कि रात के पहरे पर एक सिपाही आया। मैं हवालात के सलाखों वाले दरवाजे के पास, गर्मी के कारण, बेहोश सा पड़ा था। वह सिपाही लखनऊ में पिताजी के साथ ड्यूटी पर रहा था—जब वे पन्त जी की सरकार में ग्राम सुधार अफसर थे। ठा० फूलसिंह नाम के उस सामान्य सिपाही की मुख-मुद्रा आज भी मुझे याद है। नुकीली लम्बी मूछें—तेज आँखें, सफेद दाँत, गोल साँवला चेहरा, लंगड़े आम के रंग तथा आकार की, न जाने क्यों, याद दिलाता था। उसने कहा था "बेटा रमेश ! मेरी बात ध्यान से सुनो।" उसने मेरी ओर पीठ करके रात के दो बजे जो बातें मुझसे कहीं उनसे अचानक पीड़ा तथा भ्रम का कुहासा हट गया, मानो मेरा नैतिक पुनर्जन्म हो गया। उसने कहा था "तुम्हारे बाप का नाम आज लोग इज्जत से लेते हैं—तुमने भूदेव की तरह अगर इकबाली बयान दे दिया तो 'रमेश का बाप' कह कर उन पर लोग थूकेंगे। मुझ पर उनके बड़े एहसान हैं, वे देवता हैं, उनकी इज्जत तुम्हारे हाथ है" मैंने रोकर उससे कहा कि "अब मुझसे सहा नहीं जाता क्या करूँ ? ' उसने कहा कि "पुलिस तुम्हें हवालात में मरने नहीं देगी, तुम

भूख हड़ताल कर दो, तीन चार दिन में हालत खराब होने पर जेल भेज देगी। वहाँ यह मार-पीट नहीं होगी" अन्य उपदेश भी, रामायण की पंक्तियों के साथ उसने मुझे दिए। विस्तार में नहीं जाऊँगा। फल यह हुआ कि दूसरे दिन मैं हस्ताक्षर करने से अपने को रोक सका। मानो नया बल मुझमें आ गया था। दिमाग साफ हो चुका था। खाना पानी मैंने बन्द कर दिया और थानेदार से कह दिया कि जब तक जेल नहीं भेजा जाऊँगा, मैं उनका चना-पानी ग्रहण नहीं करूँगा। शाम को बढ़िया भोजन, अंगूर इत्यादि लाये गए। ठा० फूलसिंह ने मुझे सचेत कर दिया था, इस लिए भयंकर भूख तथा इच्छा होते हुए भी मैंने नहीं खाया।

५९ वे दिन जब अर्धमृत अवस्था हो गई तो हथकड़ी लगाकर इक्के में डालकर मुझे ज़िला जेल भेज दिया गया। वहाँ कोई मारपीट तो नहीं हुई परन्तु कुछ दिन फाँसी की सज़ा पाने वाले कैदियों के कमरे में रखा गया और डराया गया कि मुझे फाँसी होगी—परन्तु मैं भय-मोह के पुलों को पार कर चुका था, कोई असर मुझ पर नहीं हुआ।

ज़िला जेल से तीन मास बाद मुझे बड़ी जेल भेजा गया। जहाँ पिताजी तथा उनके अन्य साथी थे। बड़ी जेल पहुँचने पर सबने मेरा स्वागत किया। वहाँ लगभग ३०० सुरक्षा-बन्दी थे, पिताजी तथा उनके साथी रामप्रसाद बिस्मिल वाली बैरक में Terrorist and Revolutionery बना कर रखे गए थे। सब लोग मुझसे जेल में घुसते ही मिले—मैं सब से छोटा था। सबने प्यार किया, परन्तु पिताजी नहीं आये। थोड़ी देर बाद ताऊजी मुझे एकान्त में ले गए और कहा "श्रीराम ने कसम खाई है कि अगर पल्लू (मेरा घर का नाम) ने भूदेव के समान इकबाली बयान दिया है तो मैं उसका मुँह जीवन भर नहीं देखूँगा।" मैं घबरा गया। फिर पूछा "तू ने कोई बयान तो नहीं दिया, किसी कागज़ पर हस्ताक्षर तो नहीं किए ?" जब मैंने उन्हें विश्वास दिलाया तो वे मुझे बैरक के पीछे ले गए, पिताजी अन्धा-धुन्ध चर्खा कात रहे थे। ताऊजी ने जब सिर हिलाकर मना किया, तब वे समझ गए कि मैंने बयान नहीं दिया है। उन्होंने मुझे अंक से लगाया। मैंने उनके नेत्रों में तीन बार आँसू देखे हैं। श्रीं गणेश शंकर विद्यार्थी (जिन्हें वे अपना गुरू मानते थे) की तथा बापूजी (महात्मा गान्धी) की मृत्यु पर, तथा उस दिन।

उसके बाद मेरे कष्ट समाप्त हो गए। सबका स्नेह प्यार मिलता

था, पिताजी तथा ताऊजी साथ थे। मौज से रहता था। घर की याद अवश्य आती थी। घर पर माँ छोटा भाई (५ वर्ष) तथा बहिन (७ वर्ष) रह गए थे। उन्होंने कैसे दिन काटे—यह अन्य कथा है।

मुकद्दमा चला। हाईकोर्ट में जज थे श्री वांचू (बाद में भारत के चीफ जस्टिस) तथा हमारे मुख्य-वकील थे डा० कैलाशनाथ काटजू। मुकद्दमे का विस्तार यहाँ नहीं दूँगा। मुकद्दमे में ताऊजी, शीतल, सूरज-भान, बंगालीमल को सजाएँ हुईं। शेष लोग छूट गए। उन दिनों की असंख्य बातों और यादों पर दो पुस्तकें लिख रहा हूँ। जिनमें सारी बातें—अनेक भेद होंगे। यहाँ संक्षेप में संस्मरण का समापन करता हूँ। १९४४ के सितम्बर में पिताजी को उनके साथियों सहित फतहगढ़ जेल भेज दिया गया—क्योंकि वहाँ अधिक कड़ी सुरक्षा थी। थोड़े दिन बाद मुझे तथा अन्य आठ व्यक्तियों को भी वहाँ भेजने का हुक्म आ गया। पुलिस की मोटर आ गई। साथियों से विदा ले ली। चलने से आधा घण्टा पूर्व लखनऊ से छूटने का हुक्म, तार से, आ गया। सब लोग छोड़ दिये गए। मैं घर आ गया। केवल श्री सोमेन्द्रमोहन मुकर्जी (मेरे गुरु), उस दिन फतहगढ़ जेल भेजे गये।

१९४५ में पिताजी छूट कर आ गए, और सीधे सेवाग्राम चले गए। आन्दोलन से पूर्व वे वर्ष में, दो मास सेवाग्राम, दो मास शान्तिनिकेतन और कलकत्ता ('विशाल भारत' के सम्पादन हेतु कलकत्ता प्रति मास १० दिन के लिए) रहते थे। मैं भी उनके साथ सेवाग्राम जाता था परन्तु जेल से छूट कर पढ़ाई की टूटी शृंखला फिर से जोड़ी और जीवन अपने पुराने ढर्रे पर चलने लगा।

स्वतंत्रता के बाद लोगों ने जेल जाने के मुआवजे के रूप में लाखों रुपए, सम्मान तथा बड़े-बड़े पद पाये, और पाने के लिये तिकड़म की। माननीय पन्तजी ने जब पिताजी से पूछा तो उन्होंने कहा था "I do not want to cash upon my patriotism, and I hope my family members will follow me."

पिताजी ने फिर खेती और लिखना आरम्भ कर दिया। कुछ वर्षों बाद दोनों नेत्रों की ज्योति चले जाने के बाद भी आठ पुस्तकें लिखीं—और परिश्रम करते हुए ही परलोक सिधारे। अपने तपस्वी पिता की समानता करने की क्षमता तो मुझ में नहीं है, परन्तु १९४८ में Political sufferer

के नाते पुलिस में डी० एस० पी० का पद मिलने पर, मैंने उसे नहीं लिया। अवकाश तथा सुविधा मिलने पर कभी १९४२ की कथा विस्तार से लिखूँगा।

[१५ अगस्त १९७२ को लाल किले में प्रधानमंत्री द्वारा लेखक को ताम्र-पत्र प्रदान किए जाने के अवसर पर लिखा लेखक का संस्मरण जिसे उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग ने सरकारी पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' के लिए लिखवाया था]

° ° ° ° ° °

वैदिक परम्परा

पृथिव्यास्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि,
अंतरिक्षात् ते निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि,
दिवस्तं ते निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि,
दिग्भ्यस्तं ते निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि !

--जो हमसे शत्रुता का आचरण करता है, हम उसे इस पृथ्वी पर से उखाड़ फेंकेंगे। यदि पृथ्वी से भागकर वह अंतरिक्ष में चला जाये तो हम उसे अंतरिक्ष से भी उखाड़ फेंकेंगे। अंतरिक्ष से यदि भागकर द्युलोक में शरण ले तो हम उसे द्युलोक से भी उखाड़ फेंकेंगे। हमारे शस्त्रप्रहार से बचने के लिए यदि वह द्युलोक से पलायन कर दिशाओं में जा छिपे तो हम उसे दिशाओं से भी उखाड़ फेंकेंगे।

● ● ●

जोगु न खिथा जोगु न डण्डे जोगु न भसम चढ़ाइए।
जोगु न मुन्दी मुण्डि मुड़ाइए जोगु न सिंगी वादए ।।
अंजनि माहि निरंजन रहिए जोगु जुगति इव पाइए।
× × × ×
एक द्रसटि करि समसरि जाणै जोगी कहिए सोई ।।

—श्री गुरुनानक

हिन्दी परिषद् १९७२-७३ की गतिविधियाँ

अक्तूबर १९६५-६६ में हिन्दी परिषद् का गठन किया गया था। सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया था कि विभाग के एम० ए० उत्तरार्द्ध एवं पूर्वार्द्ध के विद्यार्थी तथा अनुसंधित्सुगण परिषद् के सामान्य सदस्य होंगे। यह नियम बनाया गया था कि जिस विद्यार्थी के पूर्वार्द्ध की परीक्षा में सर्वाधिक अंक होंगे उसे मन्त्री नियुक्त किया जायगा तथा जिस पूर्वार्द्ध के विद्यार्थी के बी० ए० में सर्वाधिक अंक होंगे उसे उपमन्त्री नियुक्त किया जायेगा। कोषाध्यक्ष का निर्वाचन पूर्वार्द्ध की कक्षा में से किया जाना निश्चित हुआ। यह भी निर्णय किया गया कि जिस विद्यार्थी ने पूर्वार्द्ध में संगीत एवं अन्य सांस्कृतिक कार्यों में सर्वाधिक रुचि प्रदर्शित की हो एवं सफलता पायी हो, उसे उपमन्त्री सांस्कृतिक कार्यक्रम नियुक्त किया जायगा। इस निर्णय के अनुसार इस वर्ष के पदेन एवं निर्वाचित पदाधिकारी इस प्रकार रहे :—

१. संरक्षक—प्रदेश के राज्यपाल तथा कुलपति परमश्रेष्ठ श्री भगवान सहाय (पदेन)।

२. अध्यक्ष—उप-कुलपति श्री नूरुद्दीन (पदेन)।

३. सभापति—डा० रमेशकुमार शर्मा, विभागाध्यक्ष (पदेन)।

४. उपसभापति—श्री त्रिलोकीनाथ गंजू, विभाग के अध्यापक (पदेन)।

(उपसभापति के विषय में यह निर्णय किया गया था कि विभाग के अध्यक्ष के अतिरिक्त जो शिक्षक विभाग में हो और परिषद् के सदस्य बनें वे बारी-बारी से प्रतिवर्ष उपसभापति का कार्य करेंगे।)

५. मन्त्री—इन्द्रजीत कौर एम० ए० उत्तरार्द्ध

६. उपमन्त्री—वीना कुमारी एम० ए० पूर्वार्द्ध

७. उपमन्त्री—सांस्कृतिक कार्यक्रम—यश सूरी एम० ए० उत्तरार्द्ध

८. अनुसंधित्सु प्रतिनिधि—विजयमोहिनी कौल

९. कोषाध्यक्ष—श्री जानकीनाथ कौल एम० ए० पूर्वार्द्ध

इस प्रकार सभी पदेन एवं निर्वाचित पदाधिकारियों को मिला कर परिषद् की कार्यकारिणी का गठन किया गया। यह भी निश्चित किया गया कि परिषद् की सामान्य बैठक प्रति शनिवार हुआ करेगी। इस निर्णय के अनुसार इस वर्ष परिषद्

की कुल सोलह सामान्य एवं विशेष बैठकें हुईं। जो मुख्य-मुख्य बैठकें परिषद् के तत्वावधान में सयोंजित हुईं उनका यथाक्रम विवरण इस प्रकार है :—

पहली विशेष बैठक दिनांक १७ मार्च १९७२ को हुई, जो कि अनुसंधित्सु श्री शशिशेखर तोषखानी के ससुर स्वर्गीय श्री श्यामलाल सप्रू, उत्तरार्द्ध की कुमारी मीना किलम के पिता स्वर्गीय श्री काशीनाथ किलम, हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, उत्तरार्द्ध की कुमारी जयजयवन्ती की माता स्वर्गीया श्रीमती शिवपुरी एवं प्रदेश के मुख्यमन्त्री तथा कश्मीर विश्वविद्यालय के सह-कुलपति स्वर्गीय श्री गुलाममुहम्मद सादिक के असामयिक निधन पर शोक प्रकट करने के हेतु हुई। इस बैठक में परिषद् की ओर से सहानुभूति एवं शोक प्रस्ताव पारित किए गए, जिनकी एक-एक प्रति दिवंगत आत्माओं के संतप्त परिवारों को भेजी गयीं।

तदुपरान्त परिषद् की दो बैठकों के मुख्य अतिथि थे उर्दू विभागाध्यक्ष डा० मुहम्मद हसन तथा फारसी के प्राध्यापक श्री रहमान राही। डा० हसन ने आधुनिक काल में साहित्य-अध्ययन के महत्व पर भाषण दिया एवं तथा राही साहिब ने अपनी कश्मीरी कविताएँ सुनाईं।

परिषद् की एक और बैठक, दिनांक १८ मार्च, १९७२ को सांस्कृतिक एवं साहित्यक गोष्ठी के रूप में विभागाध्यक्ष डा० रमेशकुमार शर्मा के सभापतित्त्व में हुई। गोष्ठी में उत्तर क्षेत्रीय भाषा केन्द्र पटियाला के प्रिन्सिपल डा० ओंकार कौल तथा द्वितीय भाषा के रूप में कश्मीरी-शिक्षण का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे उनके अध्यापक तथा छात्र उपस्थित थे।

परिषद् की अन्य एक विशेष बैठक दिनांक २१ अगस्त, १९७२ को अभिनन्दन समारोह के रूप में हुई। सभापति आदरणीय डा० रमेशकुमार शर्मा को स्वतन्त्रता संग्राम में स्मरणीय योग दान देने के लिए राष्ट्र की ओर से प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी द्वारा १५ अगस्त को लाल किला नई दिल्ली में ताम्र-पत्र प्रदान किया गया था। इस शुभावसर पर उनके अभिनन्दन हेतु हिन्दी-विभाग की ओर से एक समारोह किया गया। इस अभिनन्दन समारोह का सभापतित्त्व माननीय अतिथि डा० हरिवंशलाल शर्मा हिन्दी विभागाध्यक्ष, अलीगढ़ विश्वविद्यालय द्वारा सम्पन्न हुआ। डा० हरिवंशलाल शर्मा के अतिरिक्त इस समारोह में उपकुलपति, ख्वाजा नूरुद्दीन, डा० रमेशचन्द्र लवानिया एवं विश्वविद्यालय के अन्य विभागों के विभागाध्यक्ष एवं प्राध्यापक भी उपस्थित थे। इस समारोह में डा० रमेशकुमार शर्मा को हिन्दी विभाग की ओर से बधाई दी गयी। उन्हें एक अभिनन्दन पत्र तथा एक शील्ड भेंट की गई एवं पिछले उपसभापति डा० मुहम्मद अयूब खाँ, डा० हरिवंशलाल शर्मा, ख्वाजा नूरुद्दीन, डा० लवानियाँ ने डा० रमेशकुमार शर्मा को बधाई दी एवं अपने हृदय के उद्गारों को प्रकट किया।

परिषद् की एक अन्य विशेष बैठक दिनांक ३० सितम्बर, १९७२ को हुई जिसमें वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। इसमें पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के





समापन समारोह में वार्षिक रिपोर्ट पढ़ते हुए, हिन्दी परिषद् की मन्त्री कु० इन्द्रजीत कौर ।



मंत्री को पुरस्कार प्रदान करते हुए उपकुलपति, श्री नूरुद्दीन ।

विद्यार्थियों ने भाग लिया। वाद-विवाद का विषय था "पीढ़्यान्तर समस्या का उत्तरदायित्व पुरानी पीढ़ी पर है।" इसमें प्रथम पुरस्कार पूर्वार्द्ध की वीना कुमारी को द्वितीय पुरस्कार उत्तरार्द्ध के श्री राजकृष्ण कौल एवं सरोज शर्मा को, तथा प्रोत्साहन पुरस्कार उत्तरार्द्ध की मीना किलम को देने का निर्णय हुआ।

तत्पश्चात् एक अन्य विशेष बैठक में निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन हुआ, जिसमें पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के विद्यार्थियों ने भाग लिया। पूर्वार्द्ध में प्रथम पुरस्कार वीनाकुमारी, द्वितीय पुरस्कार मधु सहगल एवं उत्तरार्द्ध में प्रथम पुरस्कार नैनसी रैना तथा द्वितीय पुरस्कार सरला कौल ने प्राप्त किया।

इसके अतिरिक्त परिषद् की जितनी भी बैठकें हुईं उनमें विभाग के विद्यार्थियों ने अपनी लिखी रचनाएँ सुनाईं तथा समय-समय पर डा० रमेशकुमार शर्मा, उप-सभापति श्री त्रिलोकीनाथ गंजू, श्री भूषणलाल कौल एवं डा० अय्यूब खाँ ने अपनी रचनाएँ सुनाकर विद्यार्थियों को लाभान्वित किया। इस वर्ष विद्यार्थियों द्वारा दो निबन्ध, अठारह कविताएँ एवं ग्यारह कहानियाँ लिखी एवं सुनाई गयीं। ये सभी रचनाएँ मौलिक थीं। इनमें से अनेक रचनाओं की प्रशंसा की गयी तथा सर्वश्रेष्ठ रचनाओं पर पारितोषिक दिए जाने की घोषणा की गयी और उन्हें विभागीय-पत्रिका में छपाने के लिए कहा गया। परिषद् के जिन ध्येयों का ज्ञापन आरम्भ में किया गया था लगभग उन सभी में उसे सफलता प्राप्त हुई।

२२ सितम्बर सन् १९७२ को हिन्दी विभाग के ५ छात्रों का एक दल विभाग के प्राध्यापक डा० भूषणलाल कौल के नेतृत्त्व में हरमुकुट गंगा की पर्वतीय यात्रा पर गया। दल के सदस्य २५ सितम्बर १९७२ को ३ बजे १५,००० फुट ऊँची चोटी पर पहुँचे।

इस वर्ष निम्नलिखित विद्यार्थियों को पदक एवं पारितोषिक दिए जाने की घोषणा की गयी। ये पारितोषिक परिषद् के समापन समारोह में दिए जाने का निर्णय किया गया।

१. **स्वर्ण-पदक**—प० जगन्नाथ तिवारी स्वर्ण-पदक; १९७१ की एम० ए० की परीक्षा तथा कला संकाय में विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त करने के हेतु—**कु० बिमलाकुमारी मुंशी।**

२. **रजत-पदक**—प० जगन्नाथ तिवारी रजत-पदक; १९७१ की एम० ए० पूर्वार्द्ध की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने हेतु—**इन्द्रजीत कौर (उत्तरार्द्ध)**

साहित्यिक कृतियों के लिए—

१. कुमारी मीना किलम (उत्तरार्द्ध)

२. सोमनाथ कौल (अनुसंधित्सु)

इसके अतिरिक्त खेलकूद में सक्रिय भाग लेने एवं सफलता प्राप्त करने हेतु क्रीड़ा-पदक कुमारी सरोज शर्मा (उत्तरार्द्ध)।

कुछ विद्यार्थियों को परिषद् के पदाधिकारी नियुक्त होने के हेतु एवं परिषद् की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने के हेतु प्रमाण पत्र दिये जायेंगे—

१. इन्द्रजीत कौर—मन्त्री
२. वीना कुमारी—उपमन्त्री
३. यश सूरी—उपमन्त्री सांस्कृतिक कार्यक्रम
४. जानकी नाथ कौल—कोषाध्यक्ष
५. विजयमोहिनी कौल—अनुसंधित्सु प्रतिनिधि

जिन विद्यार्थियों ने समय-समय पर परिषद् की गोष्ठियों में अपनी रचनाएँ सुनाईं, उनमें से कुछ को पुस्तकें पारितोषिक रूप में प्रदान की जायेंगी। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. सरोज शर्मा (उत्तरार्द्ध)
२. नैनसी रैना (उत्तरार्द्ध)
३. नीरजा मुंशी (उत्तरार्द्ध)
४. नन्ना गंजू (उत्तरार्द्ध)
५. निर्मल ऐमा (पूर्वार्द्ध)
६. वीना कुमारी (पूर्वार्द्ध)
७. विजयमोहिनी कौल (अनुसंधित्सु)

परिषद् के कार्यों में जिन विद्यार्थियों ने सक्रिय योगदान दिया उन्हें पुस्तकें दी जायेंगी।

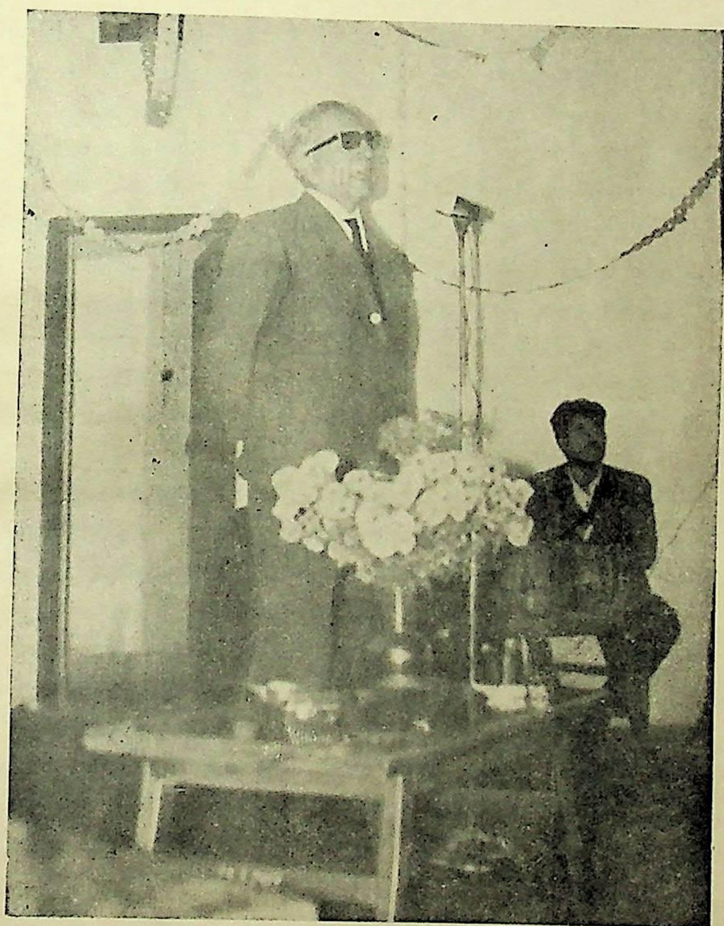
उनके नाम निम्नलिखित हैं—

१. बिमला कुमारी मुंशी (अनुसंधित्सु)
२. इन्द्रजीत कौर (उत्तरार्द्ध)
३. यशसूरी (उत्तरार्द्ध)

परिषद् के तत्वावधान में सम्पन्न वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय एवं प्रोत्साहन पुरस्कार पाने वाले विद्यार्थियों को क्रमशः ५०) रु० ३०) रु० एवं १५) रु० की पुस्तकें प्रदान की जायेंगी। विद्यार्थियों के नाम पीछे दिये जा चुके हैं।

परिषद् के तत्वावधान में सम्पन्न निबन्ध-प्रतियोगिता में प्रथम एवं द्वितीय पुरस्कार पाने वाले पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के विद्यार्थियों को पुरस्कार में क्रमशः ३०) एवं २०) रु० की पुस्तकें प्रदान की जायेंगी। उन विद्यार्थियों के नाम भी पीछे दिए जा चुके हैं। इस वर्ष परिषद् की ओर से ६५०) रु० विद्यार्थियों को कर्ज एवं आर्थिक सहायता के रूप में दिए गए। ६००) रु० विभाग के कर्मचारियों को कर्ज के रूप में दिए गए। यहाँ मैं यह स्पष्ट करना चाहूँगी कि परिषद् का खर्च विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के चन्दे से चलता है। आशा है कि विश्वविद्यालय की ओर से आगे से परिषद् के लिए कुछ अनुदान मिल सकेगा।

दिनांक २१ अक्तूबर सन् १९७२ को गत सत्र का समापन समारोह किया गया। इस समारोह का सभापतित्व उपकुलपति ख्वाजा नूरुद्दीन ने किया। इस समारोह में कुलपति श्री भगवानसहाय (जिन्हें सभापतित्व करना था) अस्वस्थ होने



उपकुलपति द्वारा अभिभाषण।

के कारण न आ सके। इसलिए इस समारोह का सभापतित्त्व आदरणीय उपकुलपति महोदय द्वारा सम्पन्न हुआ। श्री नूरुद्दीन के अतिरिक्त इस समारोह में विश्वविद्यालय के अन्य विभागों के विभागाध्यक्ष एवं अध्यापकगण भी उपस्थित थे।

कार्यक्रम का श्रीगणेश सरस्वती-वन्दना से हुआ। इसके पश्चात् हिन्दी-परिषद् के सभापति डॉ० रमेशकुमार शर्मा ने मान्य अतिथि तथा समारोह में उपस्थित महानुभावों को परिषद् के नियमों से अवगत कराया तथा परिषद् के पदाधिकारियों का परिचय उपकुलपति महोदय से कराया एवं सभी उपस्थित सज्जनों को कुलपति श्री भगवानसहाय की अनुपस्थिति का कारण बताते हुए उपकुलपति महोदय के प्रति अपना अभार प्रकट किया। इसके उपरान्त मन्त्री इन्द्रजीत कौर ने विगत सत्र की वार्षिक रिपोर्ट पढ़कर सुनाई। इसके पश्चात सांस्कृतिक कार्यक्रम आरम्भ हुआ, जिसमें उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध के कुछ विद्यार्थियों तथा अनुसंधित्सु-प्रतिनिधियों ने कश्मीरी, पंजाबी, हिन्दी तथा उर्दू के गीत आदि सुनाये।

सांस्कृतिक कार्यक्रम के अनन्तर उपकुलपति महोदय ने पदकों, प्रमाण-पत्रों तथा पुस्तकों के रूप में पारितोषिक वितरित किए। तदुपरान्त उपकुलपति महोदय ने भाषण दिया।

अन्त में, मैं सभापति डा० रमेशकुमार शर्मा, उपसभापति श्री त्रिलोकीनाथ गंजू तथा विभाग के अन्य प्राध्यापकों के प्रति हार्दिक अभार प्रकट करती हूँ, जिनके स्नेह-सिक्त पथ-प्रदर्शन के फलस्वरूप परिषद् को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त प्राध्यापिका नीना कौल, अनुसंधित्सु विमला मुंशी तथा अपने सहयोगियों यश सूरी, वीना कुमारी, सरोज शर्मा, सुमन गण्डोजा एवं मीना किलम को मैं धन्यवाद देती हूँ और इन सब के सहयोग के लिए मैं गर्व और हर्ष का अनुभव करती हूँ।

यह कहते हुए मुझे बड़ा हर्ष होता है कि इस वर्ष साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दोनों क्षेत्रों में हिन्दी परिषद् को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। मुझे केवल एक बात का खेद है कि इस वर्ष परिषद् के सदस्यों ने विश्वविद्यालय की खेल-कूद प्रतियोगिताओं में भाग नहीं लिया। पिछले वर्ष की अनियमितताओं से क्षुब्ध होकर विद्यार्थियों ने उनमें भाग नहीं लिया, यद्यपि हमारा विभाग पिछले तीन वर्षों से 'बैडमिन्टन' तथा 'थ्रोबॉल' में चैम्पियन था। आशा है, भविष्य में परिस्थितियाँ सुधरेंगी और हमारे सहयोगी फिर से खेल-कूद में भाग ले सकेंगे। परिषद् का कार्य करते समय मैंने सदा हर्ष का अनुभव किया है। मैं आशा करती हूँ कि हिन्दी परिषद् भविष्य में भी इसी भाँति उत्तरोत्तर उन्नति करती रहेगी और अगले वर्ष के मन्त्री को मैं अपना कार्य-भार सुचारु एवं सुव्यवस्थित रूप से सौंपने में समर्थ होऊँगी।

इन्द्रजीत कौर
मंत्री



मूल लेखक
डॉ० अनूपचन्द चन्दोला
अनुवादिका
डॉ० सरोजिनी शर्मा
व्याख्याता, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।

संगीत व्यवस्था की कुछ पद्धतियाँ और भाषा विज्ञान के सिद्धान्त

[प्रस्तुत लेख एरीज़ोना विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा. अनूपचन्द चन्दोला के शोध पत्र—Some Systems of Musical Scales and Linguistic Principles का अनुवाद है। यह शोध-पत्र "अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ विज्ञान समिति" की पत्रिका Semiotica के 1970 के अंक 2 में प्रकाशित हुआ था। डा. चन्दोला जैसा कि नाम से विदित होता है भारतीय हैं। लखनऊ, कैलीफोर्निया तथा शिकागो विश्वविद्यालयों में आपने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। डा. चन्दोला संस्कृत, हिन्दी तथा भाषा विज्ञान के तो विद्वान हैं ही साथ ही संगीत के भी अच्छे ज्ञाता हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में उन्होंने बड़े सुलझे हुए ढंग से भाषा विज्ञान और संगीत के सिद्धान्तों की तुलना की है।

संगीत और भाषा दोनों ही अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकात्मकता का सहारा लेती हैं। भाषा के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पक्ष ध्वनि सम्बन्धी है। संगीत का तो आधार ही ध्वनि है। इधर संगीत भी भाषा का सहारा तो लेता ही है। भाषा और साहित्य अभिन्न हैं। इस प्रकार भाषा कलात्मक या सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम है उधर संगीत स्वयं अपने में एक कलात्मक अभिव्यक्ति है। इस प्रकार भाषा और संगीत एक दूसरे के निकट आते हैं। संगीत का आधार 'नाद' है और उसकी छोटी से छोटी इकाई अर्थवती है। संगीत के भाषा-विज्ञान की तरह 'बलाघात', 'अनुतान,' 'सन्निधि' एवं 'अन्विति आदि के भाव एवं अर्थ भेद की दृष्टि से महत्वपूर्ण पक्ष हैं। उच्चारण की दृष्टि से वैदिक ऋचाओं का जो अर्थ बदल जाता है वह इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भारतीय शास्त्रीय संगीत का अध्ययन किया जाय तो उसका भाषा-वैज्ञानिक पक्ष और भी उभर कर आता है। शास्त्रीय संगीत की यही विशेषता आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों को नई दिशा और भाषाविज्ञान की नई शाखा संगीत-भाषा-विज्ञान के अध्ययन की ओर उन्मुख कर रही है। प्रस्तुत शोध-पत्र में डा. चन्दोला ने भाषा विज्ञान के एक पक्ष—अर्थ विज्ञान के साथ भारतीय शास्त्रीय संगीत व्यवस्था की राग पद्धति की तुलना की है। संदर्भगत आवश्यकताओं के कारण ही अन्य पक्षों को भी अपना लिया गया है क्योंकि भाषाविज्ञान के सभी पक्षों की शास्त्रीय संगीत के सभी पक्षों से तुलना की जा सकती है।

लेख के अन्त में जो दो परिशिष्ट हैं वे मैंने स्वयं बनाए हैं। प्रथम में भारतीय और पाश्चात्य संगीत के उन पारिभाषिक शब्दों का विवरण दिया है जो इस लेख में प्रयुक्त हुए हैं। दूसरे में भाषाविज्ञान के अँग्रेजी के जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग इस पत्र में हुआ है उनका वह हिन्दी अनुवाद दिया है जो मैंने इस अनुवाद में प्रयुक्त किया है—अनुवादिका]

भाषा-विज्ञान उन प्रतीक-चिह्नों के अध्ययन से सम्बन्ध रखता है जो कुछ विशिष्ट (वास्तविक या काल्पनिक) अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होते हैं। संगीत भी सौन्दर्यानुभूति के लिए प्रतीक-चिह्नों का प्रयोग करता है। किसी भी प्रतीक-व्यवस्था की व्याख्या भाषाविज्ञान की शब्दावली में हो सकती है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से संगीत की प्रतीक व्यवस्था का अध्ययन करना 'संगीत-भाषा-विज्ञान' कहा जा सकता है। इस शोध-पत्र में भी संक्षेप में यह बताने का प्रयास किया जाएगा कि संगीत की व्यवस्थाएँ[1] भी बहुत कुछ भाषा के समान अर्थविज्ञान-सम्बन्धी व्यवस्थाएँ हैं।

इसके लिए मैंने भारतीय शास्त्रीय संगीत को चुना है, जिसकी दो मुख्य संगीत-पद्धतियाँ हिन्दुस्तानी संगीत और कर्नाटक संगीत हैं। दूसरी अर्थात् कर्नाटक पद्धति भारत के चार दक्षिणी राज्यों (आंध्र प्रदेश, मैसूर, तामिलनाडु और केरल) में और श्रीलंका में प्रचलित है। भारत के अन्य क्षेत्रों तथा नेपाल, पाकिस्तान, अफगानिस्तान में हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति प्रचलित है। इस शोध-पत्र में हिन्दुस्तानी संगीत की राग-पद्धति को मैं आधार के रूप में प्रयुक्त करूंगा।[2]

---

1. "संगीत पद्धतियाँ" शब्द सामान्य रूप से सौन्दर्यानुभूति के उद्देश्य से प्रयुक्त बहुत-सी सहायक पद्धतियों के संयुक्त रूप के लिए किया जाता है। जैसे अगर एक अंग्रेजी भाषा का गाना गाने वाला जब नाचता है 4/4 के 'कामन टाइम' में गाता है। वास्तव में एक गायक इस प्रदर्शन में 5 पद्धतियों का पालन करता है। (1) स्वर-पद्धति (2) भाषा-पद्धति (अँग्रेजी भाषा) (3) स्वरसंघटन के लिए लय-पद्धति (4) गीत की छन्दात्मक पद्धति (5) नृत्य-पद्धति। पद्धति (1) और (3) केवल संगीत से सम्बन्धित है। ध्यान देना है कि (3) और (4) का मेल आपस में हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। भारत के अधिकांश लोकगीतों में गीत का एक बोल या अक्षर (Syllable) तालवाद्य की मात्रा से समान रूप से निरंतर मेल रखेगा परन्तु शास्त्रीय संगीत में ऐसा यदाकदा ही मिलेगा। फिर भी (3) और (4) पद्धतियों का अन्तर स्पष्ट करना वर्णन की दृष्टि से उचित ही है। परन्तु कविता का छन्द और संगीत का छन्द दो भिन्न पद्धतियाँ हैं।
2. श्री वी. जी. जोग, श्री रामनरायन, श्री शंकर घोष और अली अकबर खाँ जैसे मूर्धन्य भारतीय संगीतकार जो यूरोप और अमरीका में भी प्रसिद्ध हैं ने मुझे जो व्यक्तिगत रूप से समय देकर भारतीय शास्त्रीय संगीत के पक्षों पर मेरे साथ जो विचार विमर्श दिया हैं उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ, और उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

इस अध्ययन को मैंने तीन भागों में बांटा है —

भाग—1—संगीत-व्यवस्था के सिद्धान्तों के मूलतत्त्वों को संक्षेप में स्पष्ट किया है।

भाग—2—इस विषय से सम्बन्ध रखने वाले भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों के मूलतत्त्वों की संक्षिप्त चर्चा की है।

भाग—3—दूसरे भाग में चर्चित भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों को रागों में कहाँ तक देखा जा सकता है—इसका अध्ययन किया गया है।

भाग—1 राग सामान्य रूप से उस व्यवस्था (एक अष्टक में आने वाले विशिष्ट स्वर-समूह) को कहेंगे जिसके आरोह और अवरोह में विशेष क्रम हो।[3] अष्टक में C^1, D, E, F, G, A, B और C^2 होते हैं। पहले C (C^1) और अन्तिम C (C^2) में 1 : 2 का अनुपात है। भौतिकी के अनुसार अगर पहला C 240 प्र/सै० आन्दोलन संख्याओं वाला है तो अन्तिम C 480 प्र/सै० आन्दोलन संख्याओं वाला होगा। यह C^1 और C^3 वाला अनुपात भारतीय तथा पश्चिमी संगीत दोनों के अनुरूप है। पाश्चात्य संगीत के स्वरों के नामों C, D, E, F, G, A, B के लिए आधुनिक भारतीय संगीत के स्वरों के तत्सम्बन्धी नाम सा, रे, ग, म, प, ध और नी हैं। भारतीय संगीत के अनुसार C^2 एक प्रकार से अतिरिक्त है क्योंकि वह $सा^2$ है। इस प्रकार भारतीय अष्टक पद्धति में C^2 नहीं गिना जाता क्योंकि वह आगामी सप्तक का प्रथम स्वर है, जिसमें यह C^2 या $सा^2$ C^1 या $सा^1$ में परिवर्तित हो जाता है। यही कारण है कि भारतीय संगीत में इसे सप्तक कहा जाता है; अष्टक नहीं। दूसरे शब्दों में भारतीय अष्टक का पहला स्वर C (स) है और अन्तिम B (नी) है जो सप्तक निर्माण करते हैं। तो भी बाद में हम देखते हैं कि वादी और सम्बादी स्वरों में निर्माण के लिए जबकि सप्तक को दो बराबर भागों में बांटना पड़ता है तब C^2 ($सा^2$) भी गिना जाता है। तब सप्तक के सात मूल स्वरों के

---

3. मैंने जानबूझ कर पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति 'स्टॉफ नोटेशन' को यहाँ इन कारणों से प्रयुक्त नहीं किया (1) स्टॉफ स्वर लिपि पद्धति के प्रतीक चिन्ह (स्वर) आकृति में प्रस्तुत किए जाते हैं स्वरों को नहीं रखा जाता वे आकृतियाँ ताल निर्देशन के साथ होती हैं। मैं यह भी कह चुका हूँ कि स्वर पद्धति लय पद्धति से भिन्न है। लय का सम्बन्ध ताल से है जो इस शोध-पत्र का विषय नहीं है। (2) 'लेजन लाइन' और उनमें स्वरों को आकृतिबद्ध करने से टंकन में यह आसान पड़ता है कि C, D, E, F आदि स्वर लिखे जायें। (3) भारतीय स्वरलिपि पद्धति में प्रत्येक स्वर अपने पूरे नाम के प्रथम अक्षर से प्रतिनिधित्व करते है जैसे—म (F) मध्यम कहे जाने वाले स्वर का संक्षिप्त संकेताक्षर है और मात्राएँ अंकों में भापन के ऊपर निश्चित स्थान पर लिखी जाती हैं। C D E F G A B से स्वरों को बताना भारतीय स्वर लिपि पद्धति के स रे ग म प ध नि से मेल भी रखता है।

अतिरिक्त पांच अर्द्ध स्वरों को भी जोड़ा जाता है। संगीत की ध्वनियाँ जिन्हें भारतीय संगीत में स्वर कहा गया है भाषाविज्ञान में ध्वनि वर्गीकरण की दृष्टि से 'स्वर 'ध्वनियाँ हैं। स्वर दो प्रकार के हैं—1 शुद्ध स्वर या मूल स्वर 2—परिवर्तित या विकृत स्वर। स और प के अतिरिक्त प्रत्येक स्वर का एक-एक विकृत या परिवर्तित स्वर होता है। इस प्रकार रे कोमल, ग कोमल, म तीव्र, ध कोमल, नी कोमल स्वर विकृत स्वर हुए जिन्हें हिन्दुस्तानी संगीत लिपि में रे, ग, मं, ध, नी चिह्नित किया जा सकता है। ध्यान रखना चाहिए कि म अपने में स्वयं मूल स्वर है और वह परिवर्तित होकर तीव्र (ऊँची तारता के रूप में विकृत होता है जो पाश्चात्य संगीत शास्त्र में प कोमल (Gf) कहा जा सकता है।) स और प संस्कृत में अकाल स्वर अर्थात स्थिर स्वर कहे जाते हैं जिन्हें हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में 'अचल स्वर' कहा जाता है। इसका अर्थ है स और प का क्रमशः स कोमल स तीव्र या प कोमल प तीव्र जैसा कोई परिवर्तित रूप नहीं मिलता। पाश्चात्य संगीत की शब्दावली में हम कह सकते हैं कि स और प हमेशा मूल शुद्ध स्वर होते हैं और अगला 'अद्ध-स्वरान्तर' उससे आगे के और पीछे के शुद्ध स्वर से सम्बन्ध रखता है। यहाँ तक सतही तौर पर ऐसा लगता है कि भारतीय और पाश्चात्य संगीत के अष्टक समान हैं जहाँ एक के बाद एक तत्संबंधी शुद्ध स्वर और विकृत स्वर (अर्द्ध स्वर) हैं। इस प्रकार का एक उदाहरण दें तो देखेंगे कि भारतीय स सदा स्थिर (अचल) या अपरिवर्तित है लेकिन पाश्चात्य संगीत पद्धति में इसको नी तीव्र (Bs) या रे कोमल-कोमल (Dff) जैसा नाम दे सकते हैं, और फिर भी यह स (C) ही होगा। इसके लिए हम पियानो के 'की बोर्ड' को देखें। यहाँ Bs (नी तीव्र) का अर्थ है B के बाद एक स्वर बजाया जाय (B के दाईं ओर जो कि आगामी अष्टक [ऊँचे] का प्रथम C होगा) इसी प्रकार Dff (रे कोमल कोमल) का अर्थ है D से पहले दो स्वर बजाए जायँ जो कि उसी अष्टक का C है जिसमें कि मूल स्वर D का यह Dff उत्पन्न होता है। जो भी हो भारतीय और पाश्चात्य दोनों संगीत पद्धतियों की अपनी निजी 'स्वरलिपि पद्धति' और प्रस्तुतीकरण के तरीकों के कारण है, (जिनसे हमारा कोई विरोध नहीं) और ये थोड़े से हेर-फेर के साथ एक-दूसरे में अनुवादित किये जा सकते हैं।

वास्तविकता यह है कि भारतीय अष्टक (या सप्तक 22 मुख्य ध्वनियों पर आधारित है जो कि एक प्रकार से स्वरों का 'सूक्ष्म स्वरान्तर' है। इस प्रकार से हम एक रेखा की कल्पना करें जो 22 बराबर भागों में बँटी हो जैसा कि तालिका 1 में दिखाया गया है। सैद्धान्तिक रूप से तालिका 1 की रेखा को और भी अधिक संख्या के अनुस्तरित स्वरों के गुच्छ में विभाजित किया जा सकता है।) भारतीय संगीतकारों का दावा है कि कान 22 भिन्न-भिन्न सूक्ष्म स्वरों या सूक्ष्म-स्वरान्तरों को अनुभव करने में पूर्णतः सक्षम हैं। ये सूक्ष्म अन्तराल भारतीय संगीत में 'श्रुति' कहे जाते हैं। प्रत्येक श्रुति के अलग-अलग नाम दिए गए हैं जो इस प्रकार हैं—1

=तीव्रा, 2=कुमद्वती, 3=मन्दा, 4=छन्दोवती, 5=दयावती, 6=रंजनी 7=रक्तिका, 8=रौद्री, 9=क्रोधा, 10=वज्रिका, 11=प्रसारिणी, 12=प्रीति, 13=मार्जनी, 14=क्षिति, 15=रक्ता, 16=संदीपनी, 17=आलापिनी, 18=मदन्ती, 19=रोहिणी, 20=रम्या, 21=उग्रा, 22=क्षोभिणी। 23वीं श्रुति पुनः तीव्रा ही होगी क्योंकि 23वीं श्रुति संख्या आगामी सप्तक का प्रथम स्वर सा ही होगा। दूसरे शब्दों में अगर पहली श्रुति तीव्रा की प्र/सै. आन्दोलन संख्या 256 है तो 23वीं श्रुति तीव्रा की आन्दोलन संख्या 512 प्र/सै. होगी। अगर 23वीं श्रुति तीव्रा है तो 24वीं कुमुद्वती होगी जो कि दूसरी श्रुति कुमुद्वती से दुगनी होगी। इसी क्रम के 1 : 2 के अनुपात द्वारा आप एक सप्तक ऊँचा और नीचा क्रम बना सकते हैं।

अब हम भौतिकी के आधार पर भारतीय और पाश्चात्य अष्टक के प्रत्येक शुद्ध स्वर और अर्द्ध स्वर की आवृत्तियों पर आते हैं।

श्री बी. एन. भातखण्डे (10 अगस्त, 1860—19 सितम्बर 1936) ने 6 खण्डों में "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" ग्रन्थ मराठी भाषा में लिखा; जिसमें हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का सर्वाधिक प्रामाणिक वर्णन है और जो मापदण्ड मानी गई है (यद्यपि सभी विद्वान इनके विचारों से पूर्णतः सहमत नहीं हैं) इनकी पुस्तक के चतुर्थ खण्ड में जो कि 1923 में प्रकाशित हुआ था, में लेखक ने एक प्रकार से नमूने के तौर पर, भारतीय एवं पाश्चात्य अष्टकों को प्रति सैकिण्ड आन्दोलन संख्याओं की समानताओं एवं विभिन्नताओं की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। (देखिये तालिका 2) तालिका 2 की तुलनाएँ यह मानकर चली हैं कि मध्य स की 240 प्र/सै. आन्दोलन संख्याएँ हैं और मध्य ध की 400 प्र/सै. हैं। मेरे विचार से पाठक जानते हैं कि सन् 1939 में अधिकतर पाश्चात्य देशों में 440 प्र/सै. आन्दोलन संख्याओं को ध (A) के लिए मापदण्ड के रूप में स्वीकार कर लिया था। जो भी हो स (C) से ध (A) का अनुपात अब भी 3:5 है। यहाँ पर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अनुपात के हिसाब से पश्चिमी और भारतीय अष्टक में 6 स्वर समान हैं और 6 स्वर भिन्न हैं। चाहे हम तालिका 2 का प्रयोग करें या सन् 1939 में स्वीकृत परम्परा का। असमानताएँ इतनी कम हैं कि एक साधारण 'संगीत-प्रिय कान' इन भेदों को सूक्ष्मता से ग्रहण कर सकें यह आवश्यक नहीं है। मैंने देखा है सामान्य भारतीय संगीतज्ञ को अधिकांश रागों को 'अचल थाट' वाले वाद्य जैसे औरगन, पियानो एकोर्डियन पर बजाने में कोई गंभीर आपत्ति नहीं है; जबकि वॉयलिन जैसे गज से बजने वाले तार वाद्यों पर भारतीय स्वरों की आवृत्तियों को छोड़ने का कोई कारण नहीं है। हालांकि शुद्धिवादी संगीत में स्थिर तारता पर बने वाद्यों को किसी भी स्तर पर स्वीकार नहीं करते क्योंकि उस पर आप श्रुतियों या सूक्ष्म स्वरान्तरों को नहीं प्राप्त कर सकते। दूसरी ओर आप वॉय-

लिन पर किसी भी इच्छित श्रुति को प्राप्त करने के लिए उँगलियों को फिसला सकते हैं।

स्वरों की संख्या के आधार पर रागों को 3 भागों में विभाजित करते हैं :—

1. 5 स्वरों के औडव जाति के राग।
2. 6 ,, ,, षाडव ,, ,, ,,
3. 7 ,, ,, सम्पूर्ण ,, ,, ,,

इस प्रकार किसी भी राग में 5 स्वरों से कम और 7 से ज्यादा स्वर नहीं हो सकते।

प्रत्येक राग में स्वरों का एक आरोह का और एक अवरोह का क्रम होता है। आरोह और अवरोह दोनों क्रम में समान स्वरों की संख्या हो सकती है जैसे तालिका 3 में भूपाली राग है। दूसरी तरफ एक राग आरोह में 5 स्वर और अवरोह में 7 स्वर का हो सकता है जैसे कि तालिका 3 में राग 'शुद्ध कल्याण' है इस प्रकार के विधान के अनुसार रागों के नौ उप-विभाग और हो सकते हैं। एक राग के आरोह और अवरोह दोनों क्रम में एक ही स्वर के शुद्ध और विकृत रूप साथ-साथ नहीं हो सकते। तालिका 3 में राग 'तिलग' में आरोह में जबकि नी शुद्ध है तब वह अवरोह में कोमल है।

पाश्चात्य संगीत व्यवस्था की तरह भारतीय संगीत व्यवस्था में भी प्रत्येक राग में एक 'वादी स्वर' और एक 'सम्वादी स्वर' का होना अनिवार्य है। राग के बाकी स्वर अनुवादी कहे जाते हैं। जो स्वर राग में निषिद्ध हैं वे 'वर्जित' या 'विवादी' स्वर कहे जाते हैं। भारतीय संगीत के अनुसार वादी और सम्वादी स्वर का जो सम्बन्ध है वह पाश्चात्य पाठकों के लिए थोड़ा असामंजस्यपूर्ण है। भारतीय संगीत में कोई भी स्वर वादी हो सकता है और उसका सम्बन्धित पाँचवा या चौथा 'पूर्ण स्वरांतरीय स्वर' (मेजर टोन) सम्वादी स्वर होता है। जैसे अगर स वादी स्वर होगा तब प सम्वादी स्वर होगा। लेकिन अगर इसे उलट दिया जाय तो पाँचवाँ 'पूर्ण स्वसतरीय स्वर' प वादी स्वर होगा। और स समवादी स्वर होगा। यह उलट देना ही दो विभिन्न राग उत्पन्न कर देगा। यद्यपि वे अन्य विशेषताओं में हर प्रकार से एक दूसरे के समान हो सकते हैं। इसी प्रकार से अगर स स्वर वादी है तो उसका चौथा 'पूर्ण स्वरांतरीय स्वर' म सम्वादी हो सकता है। इसको भी उलटा जा सकता है। इस प्रक्रिया में भी हम दो विभिन्न रागों को प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए अष्टक को दो बराबर भागों में बाँटा गया है—

1—पहला आधा भाग या तो स से म तक या स से प तक। इसे पूर्वांग कहते हैं।

2—दूसरा आधा भाग या तो म से सं (C^2) तक या प से सं (C^2) तक। इसे उत्तरांग कहते हैं।

वादी और सम्वादी स्वर एक ही भाग में नहीं आ सकते।

उदाहरण के लिए राग 'गुणकली' पूर्णतः पाश्चात्य C 'मेजर स्केल' (देखिए तालिका-3) है। जैसे मेजर C में वादी C (स) है और उसका पाचवां पूर्ण गुरु स्वर (मेजर टोन) G (प) सम्वादी (जिसे दूसरे आधे भाग में रखा गया है) है। C मेजर स्केल के अन्य बचे स्वरों के लिए पाश्चात्य व्यवस्था की भाँति (D [रे] सुपर टोनिक, E [ग] मीडिएन्ट, F [म] सब-डोमीनेन्ट, A [ध] सब मीडिएन्ट और B [नी] लीडिंग टोन हुए) भारतीय पद्धति में कोई दूसरा नाम नहीं है। प्रत्येक बचे स्वर जैसे D, E, F, A और B (C मेजर स्केल) सामान्य दृष्टि से भारतीय पद्धति में अनुवादी स्वर कहे जाएँगे। अब अगर हम 'C मेजर स्केल' के वादी और सम्वादी क्रम को उलट दें तो वह पूर्णतः भिन्न नया राग वन जाएगा। तब G वादी हो जाएगा और उसका पांचवां पूर्ण स्वर (अष्टक के प्रथम आधे भाग का) C सम्वादी होगा। हम कह चुके हैं कि वादी स्वर से चौथा पूर्ण स्वर भी सम्वादी स्वर बनाता है जो और बहुत से राग बनाता है। इस प्रकार हम एक 'मेजर स्केल' की कल्पना करें जिसमें कि स वादी हो तो उसमें चौथा पूर्ण-स्वर म सम्वादी स्वर हो जाता है (इस उदाहरण में स को अष्टक के प्रथम भाग में और म को दूसरे भाग में स्थान दिया जाएगा)। यह एक पूर्णतःभिन्न राग को जन्म देगा। इसी प्रकार अगर आप एक 'मेजर स्केल' की कल्पना करें जिसमें म वादी हो तो चौथा 'पूर्ण-स्वर' स सम्वादी होने की अपेक्षा की जानी चाहिए। इस प्रकार पुनः एक राग बनेगा जो अन्य रागों से सर्वथा भिन्न राग होगा। आगे के उदाहरणों के लिए राग भूपाली को लें जिसमें वादी ग और उसका चौथा 'पूर्ण-स्वरांतरीय स्वर' ध़ सम्वादी है। "अपेक्षाओं" का यह सिद्धान्त (वादी स्वर से चौथे या पांचवें का) गुणान्तर द्वारा रागों की संख्या में कुछ वृद्धि करता है।

यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भारतीय पद्धति में किसी भी राग में स और प वर्जित नहीं हो सकते। प्रत्येक राग में हर तरह से स और प होना चाहिए। इनका कारण है कि स और प अचल स्वर माने गये हैं। इनका अन्य स्वरों के समान परिवर्तित रूप या विकृत स्वर नहीं होता। प के साथ एक अपवाद पाया जाता है। हो सकता है कि एक राग में प न हो; इस स्थिति में ऐसे राग में म का होना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए (तालिका 3) राग 'मालकौंस' लें जिसमें प वर्जित है परन्तु वहाँ म उपस्थिति है। यह भी ध्यान देना चाहिए कि प और म एक ही राग में एक साथ वर्जित नहीं हो सकते। इस प्रकार प्रत्येक राग में, आरोह या अवरोह में म, और प में से एक का होना अनिवार्य है। राग 'भूपाली, को ही देखें जिसमें म वर्जित है परन्तु प उपस्थित है।

यह सामान्य सिद्धान्त है कि एक शुद्ध स्वर और उसका विकृत स्वर एक के बाद एक साथ साथ नहीं आ सकते। परन्तु इस सिद्धान्त के थोड़े से अपवाद हैं। उदाहरण के लिए राग 'ललित' लें जिसमें म तीव्र है और उसका शुद्ध स्वर म

बराबर क्रम से आरोह और अवरोह में आ सकते हैं, [illegible]
दिखाया गया है । भारतीय संगीत की इस प्रकार की सहज विशिष्टता '[illegible]
सिद्धान्त' अथवा राग संघटना के क्रम के अन्तर्गत हुए स्वरों की [illegible]
प्रश्न पर ले जाती है । यह विशिष्टता विशेष क्रम के [illegible] स्वरों का [illegible]
रखते हुए एक राग से दूसरे राग में विभिन्न मात्राओं में बदलती रहती है । [illegible]
का उदाहरण इस पक्ष को स्पष्ट करेगा । राग 'भूपाली' में ग के बाद [illegible]
रखा जाना शास्त्र सम्मत है । इसके अनुसार इसके आरोह क्रम में [illegible]
बाद आएगा । इसी प्रकार से रे स्वर प के बाद आ सकता है ; जबकि अवरोह क्रम
में रे स्वर ग के बाद आता है दूसरी तरफ तालिका-3 के राग 'बहार' के आरोह
क्रम में म को ग़ का अनुसरण करना पड़ता है । जैसे इस राग में [illegible]
है तो राग संघटन में म को उसके बाद सन्निधि की अवस्था में [illegible]
होगा । यहाँ पर ग जैसा स्वर 'वक्र-स्वर' कहलाएगा क्योंकि यह सामान्य आरोह
या अवरोह क्रम को (इस राग में आरोह) थोड़ा-सा उलट देता है । इस प्रकार
'सन्निधि का सिद्धान्त' स्वयं में गणित के आधार पर रागों की संख्या को कुछ सौ
तक बढ़ा देता है । जब श्रुतियों को लगाया जाता है तो रागों की संख्या हजारों तक
बढ़ जाती है हालांकि कोई भी संगीतज्ञ सामान्यतः 50 से 150 तक से अधिक
रागों का प्रयोग वास्तविक अभ्यास क्रम में नहीं करेगा ।

भाग—2

भाग 2 में, मैं भाषा के कुछ आधारभूत गुणों पर विचार करूँगा जो सम्भवतः ऐसे हैं जिनसे अधिकांश भाषा-शास्त्रियों से मतभेद नहीं होगा (कोई बात नहीं इन्हीं बातों को वे अपनी प्रणालियों और सिद्धान्तों के अनुसार चाहे जिस रूप में व्यक्त करें) । भाग 3 में स्वरों की व्यवस्था में भाषा विज्ञान के समानान्तर गुणों को खोजने का प्रयास किया जाएगा । निम्न वाक्य पर विचार करें :—

एक कुत्ते ने एक बिल्ली को 7 बजे लॉन में देखा[1]

हम कह सकते हैं कि यह वाक्य एक वक्ता द्वारा कहा गया था क्योंकि उसने एक स्थिति को अनुभव किया था (वास्तविकता में या कल्पना में) उस अनुभव की स्थिति को अभिव्यक्त करने के लिए उसने कुछ इकाइयाँ या धारणाएँ जैसे—कुत्ता, बिल्ली, लॉन आदि विशेष क्रम में एकत्रित किए हैं क्योंकि उसने उस परिस्थिति के संदर्भ में उन वस्तुओं में एक संबंध अनुभव किया था । सम्पूर्ण वाक्य इन इकाइयों का, एक-दूसरे से संबंध रखते हुए एक प्रकार की संघटना है ।

अब उदाहरण के लिए इकाई 'कुत्ते' पर विचार करें । यह इकाई एक तरफ अनेकों छोटे अर्थ घटकों (जैसे—कुत्ता, संज्ञा शब्द, सजीव) और दूसरी ओर ध्वनि घटकों [कुत्ता] (क + उ + त + आ[1] जैसे—किसी स्वनिक घटकों के सूक्ष्म

---

1. A dog watched a cat on the lawn at 7 a. m. मूल शोधपत्र का वाक्य ।

लघुत्तम रूप हैं। 'क' इसी क्रम में स्वनिक घटकों का एक लघुत्तम रूप हैं जैसे (स्पर्श, अघोष, कण्ठ्य)[2] का एक संघटन है। ध्यान देना है कि इकाई कुत्ता अर्थ घटक (या अर्थ विज्ञान सम्बन्धी) में एक 'कुत्ता' जैसे कि कोष्ठक में दिया गया है जो कि सामान्यत: यह अर्थ रखता है कि अनेकों और छोटे अर्थ घटक इस मुख्य छोटे अर्थ घटक (कुत्ते) में सन्निहित हैं; जो कि वक्ता के अन्तर को विशेष जानवर कुत्ते जैसा अनुभव करने योग्य बनाती है। स्वनिक घटकों के सूक्ष्म लघुत्तम रूप जैसे क+उ+त्त+आ (d ɔ g) आदि स्वनिम या रूपस्वनिम या संस्कृत में वर्ण (ये तीन शब्द एक ही अर्थ रखते हैं या मेरी दृष्टि में स्वनिम, और वर्ण में कोई अन्तर नहीं है।) कहे जा सकते हैं।

अर्थ विज्ञान पद्धति के क्षेत्र में अर्थ-घटक और स्वनिम घटक असंख्य हैं। एक भाषा दूसरी भाषा से भिन्न हो सकती है क्योंकि हो सकता है कि इन घटकों के चुनाव और संयोजन एक दूसरे से समान रूप में संघटित न हों। उदाहरण के लिए हिन्दी उर्दू भाषा (जिनमें एक मेरी मातृभाषा है) का शब्द बर्फ अंग्रेजी शब्द snow या ice के अर्थ में आता है। अगर मैं बम्बई में कहूँ—"मुझे बर्फ दो।" तब हमेशा हर स्थिति में "बर्फ को ice समझा जायगा। लेकिन अगर मैं यही वाक्य पौड़ी गढ़वाल (जहाँ मैं पैदा हुआ और बड़ा हुआ) जैसे एक भारतीय हिमाचल प्रदेश के शहर में कहता हूँ तब 'बर्फ' शब्द अनेकों भाषा वैज्ञानेतर संदर्भों पर निर्भर कर ice या snow समझा जा सकता है। सुनने वाले के इन अर्थ भेदों का कारण यह हो सकता है—क्योंकि बम्बई में कभी बर्फ snow नहीं पड़ती, वहाँ हिमालय में snow और ice दोनों होती हैं। लेकिन भाषा विज्ञान की दृष्टि से हम वर्फ, snow और ice के अर्थ घटकों को बीजगणितिय शब्दावली में सामान्य तौर पर निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं [3]:—

[य र ल व] [barf]
[य र ल] [snow]
[र ल व] [ice]

लघुत्तम रूप में (स्वनिम और रूपस्वनिम) बाईं ओर हमारे पास अर्थ घटक हैं और दाईं ओर स्वनिम घटक हैं। अर्थ घटक य को हम मूल्य देते हैं जिसका अर्थ "जाड़ों में किसी प्रकार का प्राकृतिक सफेद वर्षा का जमा रूप" है। अर्थ घटक व "एक प्रकार का नकली जमा हुआ पानी" अर्थ सूचित करता है। जब हिन्दी उर्दू का वक्ता बर्फ से snow का अर्थ रखता है तब वह सहज ज्ञान से अर्थ घटक य जो कि अँग्रेजी के शब्द ice में गायब है पर बल देता है (हालांकि ice का अर्थ घटक व

1. d ɔ g.
2. d=Stop, voiced dental.
3. [W X Y Z] [barf]
   [W X Y] [snow]
   [X Y Z] [als]

बर्फ में है, लेकिन बिना किसी बल के)। इसी प्रकार जब वह बर्फ का अर्थ ice रखता है तब वह सहज ज्ञान से अर्थ घटक व जो कि अँग्रेजी के शब्द snow (हालांकि snow का अर्थ घटक य या बर्फ में उपस्थित है लेकिन बिना किसी बल के) में उपस्थित नहीं है, पर बल देता है। भाषा विज्ञान के शब्दों की अस्पष्टता को दूर करने के लिए अवधारणा की यह विशिष्टता बड़ी महत्त्वपूर्ण है। वह वक्ता ही है जो सहजज्ञान द्वारा भाषा वैज्ञानिक अर्थ जानता है। इसी लिए 'वाक' शब्द भाषा से बेहतर है क्योंकि वक्ता ही अपनी स्वयं की समझा से बोलता है। श्रोता भाषा विज्ञान के संदर्भों के आधार पर वक्ता के सही अर्थ को समझ सकता है या उसे वक्ता से उसका अर्थ पूछना पड़ेगा। हमें मालूम है कि बर्फ शब्द ice और snow दोनों का द्योतक है तो भी हिन्दी उर्दू भाषी उसका अन्तर्भेद समझ जाता है। अवधारणा का सिद्धान्त (जो बनाया जा चुका है) एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्द का अनुवाद करने का एक तरीका है। परन्तु इससे भी रोचक भाषा वैज्ञानिक पक्ष एक इकाई जैसे 'बर्फ' का यह है कि वक्ता जानबूझकर इसके दोनों अर्थ घटकों 'य' और 'व' को एक हीं वाक्य में समान रूप से सर्वाधिक महत्त्व दे दे। तव यह भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से दुहरे अर्थ snow और ice के साथ श्लेष की स्थिति होगी।

अब हम पहले वाक्य (1) पर पुनः आते हैं। उस स्थिति में वक्ता 'देखा' (Watched) की धारणा का अनुभव करता है तब वह सहजज्ञान से जानता है कि इस इकाई में और अनेक दूसरे अर्थ-घटकों के अतिरिक्त तीन-तीन अर्थ घटक हैं जिसको कि हम इस रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं—देखा, क्रिया, सकर्मक आदि। कर्म इकाई 'देखा' कार्य करने वाले की अपेक्षा रखेगा जो कि कर्त्ता कहा जा सकता है। हमारे पास एक नियम है; साधारण रूप से जिसका अर्थ है कि क्रिया अर्थ घटक के लिए कर्त्ता अर्थ घटक अपेक्षित है। अगर इसके सकर्मक अर्थ-घटक हैं तो यह एक कर्म इकाई की अपेक्षा रखता है। इकाई 'देखा' एक क्रियात्मक धारणा है। यह क्रिया एक स्थान पर घटित हो सकती है और इस स्थिति में यह एक 'अधिकरण' की अपेक्षा रखता है। हम जो कहना चाहते हैं वह यह है कि जब वक्ता अपने सहज ज्ञान के कोश से एक इकाई या धारणा चुनता है उसको स्थिति पर निर्भर करते हुए अन्य इकाइयों की (जिन्हें वह दूसरों तक पहुँचाना चाहता है) आवश्यकता पड़ सकती है। इकाइयों के अर्थ घटकों और शब्दों जैसे कर्त्ता, कर्म, अधिकरण आदि (जो कि सम्बन्धात्मक अर्थ रखते हैं) एक प्रकार से अन्योन्याश्रित हैं जिसे कि हम अपेक्षा कह सकते हैं।

वक्ता की ये इकाइयाँ (स्वनिक रूप में) बोलनी है। प्रश्न यह है कि उसे इन इकाइयों को किस क्रम में रखना है। यह प्रश्न 'सन्निधि' के सिद्धान्त द्वारा हल किया जाता है। क्योंकि इस सिद्धान्त से उसने (वक्ता ने) कर्त्ता (कुत्ता) का प्रयोग गतिशीलता या क्रिया (देखा) से पहले किया और आगे भी ऐसा किया तब सन्निधि इकाइयों की युक्ति या पंक्तीय व्यवस्था की ओर संकेत करती है। 'अपेक्षा' और

'सन्निधि' के अन्तर से एक ही इकाई पूर्णतः भिन्न हो सकती है। अतः निम्न वाक्य प्रथम वाक्य से भिन्न है :—

(2) एक बिल्ली ने एक कुत्ते को 7 बजे लॉन में देखा[1]

वाक्य 1 और 2 में इकाइयों की संख्या समान है, लेकिन इन वाक्यों में 'सन्निधि' और 'अपेक्षाओं' के अन्तर्निहित सिद्धान्तों का भेद है। संक्षेप में हम कह सकेंगे कि इस प्रकार के अन्तर के लिए—'बिल्ली और कुत्ता' देखने का सम्बन्ध उत्तरदायी है। वाक्य 1 में 'कुत्ता' कर्त्ता था और 'बिल्ली' कर्म थी जबकि वाक्य 2 में यह सम्बन्ध उलट गया है।

वाक्य 2 की वही इकाइयाँ उन्हीं सम्बन्धों के साथ केवल कुछ हद तक विवरतित की जा सकती है। जैसे—

(3) A cat watched a *dog* on the lawn at 7 a. m.
(4) At 7 a. m. a cat watched a *dog* on the lawn.
(5) On the lawn a cat watched a *dog* at 7 a. m.
(6) A cat watched at 7 a. m. a *dog* on the lawn.
(7) A cat at 7 a. m. watched a *dog* on the lawn.[2]

परन्तु ऐसा नहीं हो सकता—

(8) Watched a cat on the lawn a dog at 7 a. m.
(9) A cat a dog watched on the lawn at 7 a. m.
(10) On the lawn a cat at 7 a. m. a dog watched.

जैसे संगीत की स्वर व्यवस्था में वादी स्वर को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है उसी प्रकार इन वाक्यों में इकाई 'कुत्ता' भी सर्वाधिक महत्त्व रखता है अतः उसे इटैलिक्स मे दिया गया है। इसी प्रकार दूसरी कोटि की महत्ता किसी इकाई को दी जा सकती है। उदाहरण के लिए 'देखा' जिसकी तुलना सम्वादी से की गई है।[3]

---

1. A Cat watched a dog on the lawn at 7 a. m.
2. इसके विवर्ती रूप हिन्दी में निम्न प्रकार से सम्भव हैं—
   1. एक बिल्ली ने एक कुत्ते को लॉन में 7 बजे देखा।
   2. 7 बजे एक बिल्ली ने एक कुत्ते को लॉन में देखा।
   3. लॉन में एक बिल्ली ने एक कुत्ते को 7 बजे देखा।
   4. एक बिल्ली ने 7 बजे एक कुत्ते को लॉन में देखा।
   5. कुत्ते को लॉन में 7 बजे एक बिल्ली ने देखा।
   6. 7 बजे एक कुत्ते को बिल्ली ने लॉन में देखा।
3. इस समय मैं एक पुस्तक लिख रहा हूँ जिसका शीर्षक फिलहाल Experiences and Expression : Composition of Linguistic Symbolism. है जिसमें मैंने इस भाग में दिए गए विचारों को संघठनात्मक सिद्धान्तों और भाषा के वर्णन के साथ और भी विस्तार और स्पष्टता से दिया है।

भाग—3

भारतीय संगीत पद्धति में प्रयोग किये गये स्वर के सबसे छोटे घटक को श्रुति कहते हैं। यद्यपि पुस्तकें स्वर व्यवस्था के आरोह आवरोह के क्रम को शुद्ध या विकृत स्वरों के क्रम में दे सकती हैं। संगीत विशेषज्ञ हमेशा प्रत्येक स्वर की मान्य श्रुतियों पर बल देते हैं। इस तरह ऐसे संगीतज्ञों के लिए एक ही स्वर की 3 श्रुतियों का अन्तर तीन एक दूसरे से भिन्न रागों की विशेषता बताएगा। वास्तविक प्रयोग में यह एक बहुत कठिन कार्य है क्योंकि इसके लिए एक अच्छा संगीत प्रिय कान चाहिए। ऐसे प्रशिक्षित संगीतज्ञों की संगीतात्मक बोली में श्रुतियाँ एक स्वर की अर्थ घटक के समान हैं। समान स्वरों वाले दो राग हो सकते हैं लेकिन उनमें एक ही स्वर की दो श्रुतियों में से एक पर अवधारणा के आधार पर इन रागों में अन्तर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दी उर्दू के शब्द बर्फ के सम्बन्ध में भाषा विज्ञान के समानान्तर गुणों की तुलना करें। इस प्रकार नौसिखिया श्रोता के लिए यह समझना अत्यन्त कठिन बन सकता है कि दूसरे संगीतज्ञ द्वारा कौन सा राग प्रदर्शित किया गया था। भौतिकी की दृष्टि से प्रत्येक श्रुति (या स्वर) की प्र/सै. आन्दोलन संख्या की स्वनिक घटक के साथ तुलना की जा सकेगी। यहाँ यह कहना अति कठिन है कि आया एक स्वर के अर्थ घटक और स्वनिक घटक में स्पष्ट विभाजन है। कहना यह है कि संगीत के स्वर (या श्रुतियों) कुछ नहीं है बल्कि 'काल इकाई' के अर्थ में विभिन्न ध्वनि आवृत्तियाँ हैं। इस स्थिति में हम कह सकते कि स्वयं ध्वनि की पद्धति के साथ उसकी सापेक्षित आवृत्तियों के अर्थ में काम कर रहे हैं और इसलिए आवृत्तियाँ संगीत के स्वरों की एक ध्वनि पद्धति की क्रमशः अर्थ और स्वनिक घटक हैं। यह ध्वनि को उसके अर्थ पर फेंकने के बराबर है, जो स्वयं ध्वनि ही है। कुछ भी हो स्वनिकी एक ध्वनि पद्धति है। यहाँ तक तो मैं इतना ही कहता हूँ कि श्रुतियाँ एक राग को दूसरे राग से भिन्न करने में सार्थक हैं। इसीलिए मैंने इस शोध-पत्र में (देखिये तालिका 1) उनके वास्तविक नाम और संख्याएँ दी हैं। आगे मैं इनकी चर्चा नहीं करूँगा।

हम संगीत के स्वरों को सापेक्ष आवृत्तियों के रूप में उत्पन्न करते हैं और ये आवृत्तियाँ स्वरतंत्री, तार या रीड जैसी किसी भौतिक वस्तु को आन्दोलित करने से उत्पन्न होने वाले प्र./सै. आन्दोलन संख्या में होते हैं। जिसके फलस्वरूप प्रत्येक वस्तु का सापेक्ष ध्वनि उत्पादक स्थान होता है जो आघात करने, दबाने, टँकोर करने, कम्पित करने से आन्दोलित होता है। इस तरह कम्पित होने वाला ध्वनि उत्पादक ही है। एक कम्पित करने वाली वस्तु को विभिन्न तरीकों से आन्दोलित किया जा सकता है। अतः संक्षेप में संगीत के स्वरों के उत्पादन में ये तीन ध्वनि उत्पादक साधन हैं—(1) ध्वनि उत्पादक वस्तु (जैसे—सितार पर उंगलियाँ), (2) ध्वनि उत्पादन का स्थान (जैसे—सितार पर उँगलियों के विभिन्न दवाबों के स्थान), (3) ध्वनि उत्पादन का तरीका (जैसे—उँगलियों से सितार के तारों पर टँकोर या

आघात करने का तरीका) अगर आप पियानो या ऑरगन के बजाते समय इस सम्बन्ध में सोचें तो इसका समझना अपेक्षाकृत सरल है।

विषय का गंभीर विवेचन करने पर लगता है कि एक राग एक वाक्य के समान है। एक वाक्य रूपिम, पदों और पदबन्धों जैसी अनेकों धारणाओं से बनता है। एक राग का संघटन भी स्वरों से होता है। चूँकि राग पद्धति, स्वर-पद्धति है और स्वर केवल रूप स्वनिम ही नहीं है बल्कि एक ही समय में वे धारणाएँ और पूर्ण पद ही है। निम्न वाक्य पर विचार करें—

(ii) This is the phoneme Z

यहाँ इकाई Z स्वनिम कहलाती है परन्तु यहाँ (वाक्य के संदर्भ में) उसी समय वह एक एकवचन की संज्ञा भी है जैसे—'This', 'is', और phoneme इन शब्दों के साथ उसकी अन्विति से स्पष्ट होता है। यह स्थितिरागों में स्वरों की है। वे व्यवस्था में रूप स्वनिम (स्वनिम या वर्ण) तथा पदों के रूप में एक साथ कार्य करते हैं।

ये अपेक्षाएँ राग के निर्माण में भी लागू होती हैं। एक बार संघटक (वक्ता की भाँति) एक स्वर को वादी के रूप में लेने का फैसला करता है तब वह सापेक्षित रूप से उस स्वर से चौथे या पांचवें स्वर को अष्टक के दूसरे हिस्से में सम्वादी होने की सम्भावना कर सकता है। यह इसी प्रकार से है जैसा वक्ता क्रिया इकाई 'देखा' को एक कर्त्ता इकाई की अपेक्षा के साथ चुने। तालिका 3 के रागों में हम देखते हैं कि उनमें से प्रत्येक राग के अपने अपेक्षा के सिद्धान्त पर आधारित वादी और सम्वादी स्वर हैं। यह स्वरों की संख्या इस बात पर निर्भर है कि संघटक कितने स्वरों का प्रयोग करना चाहता है। एक भाषा में नियमों का एक समूह होता है जिसका वक्ता पालन करता है। संगीत का संघटक भी संगीत की स्वर भाषा की नियमावली से बँधा हुआ है। वह अपनी रचना के लिए 5 से 7 स्वरों तक को चुन सकता है। अगर हम यह कहें कि वह आरोह में 5 और अवरोह में 7 विशिष्ट स्वरों का चुनना तय करता है तो इसके बाद उसे वादी स्वर चुनना चाहिए। अगर वह म को वादी स्वर के रूप में चुनता है तो वह सम्वादी रूप में स या नी को ही चुन सकता है। अगर म स (जिसका अर्थ स और सं दोनों हैं) की अपेक्षा रखता है तब म और स इस ओड़व सम्पूर्ण जाति के राग में क्रमशः वादी और सम्वादी हैं। अगर संघटक का विचार बदलता है (उसकी सौन्दर्यानुभूति के अनुसार) तब वह दूसरे स्वरों को और पहले चुने हुए क्रम को बदले बिना वादी स्वर को म से प में बदल सकता है। अब प वादी के रूप में है और वह सम्वादी रूप में स की अपेक्षा करता है। समस्त दूसरी इकाइयों को ज्यों का त्यों रखते हुए और केवल वादी स्वर को बदलने का यह साधारण कार्य एक सौन्दर्यात्मक और पूर्णत भिन्न रचना का निर्माण करता है। यह स्थिति अँग्रेजी के वाक्य (1) और (2) से तुलनीय है जिसमें कुत्ता, कर्त्ता के रूप में, बिल्ली की जगह बदल गया था। श्रोता पर इन

वाक्यों का प्रभाव पूर्णतः भिन्न पड़ता है। अब तालिका 3 में राग 'भीमपलासी' और राग 'धनाश्री' को देखें जो केवल वादी स्वर के कारण भिन्न हैं।

यहाँ यह बात अत्यन्त रोचक है कि एक संगीतज्ञ जानबूझ कर श्रोक्ता को भ्रमित कर सकता है कि आया यह राग 'भीमपलासी' है या 'धनाश्री'। अगर वह संघटक को प्रदर्शित करते हुए वादी रूप में म और प पर बराबर मात्रा में अवधारणा करता है (और स दोनों के लिए सम्वादी है ही) इस प्रकार की स्थिति शब्द 'बर्फ' (देखिए भाग २) के अर्थ-घटकों 'य' औ 'व' से तुलनीय है जहाँ कि य पर सर्वाधिक अवधारणा का अर्थ snow है और उसी कोटि की अवधारणा में 'व' पर परिवर्तन का अर्थ ice है यहाँ पर श्लेषात्मक चमत्कार का आनंद है जहाँ पर य और व बरावर कोटि की महत्ता रखते हैं। उच्च कोटि के साहित्यकारों के हाथ में आकर श्लेष सौन्दर्यानुभूति की दृष्टि से पाठकों और श्रोताओं के लिए कलात्मक आनन्द प्रदान करने का साधन है। इसी प्रकार उच्चकोटि के संगीतज्ञ ऊपर बताई परिस्थितियों में एक ही संघटन में (राग में) एक वादी स्वर के बाद दूसरे वादी स्वर को चमकाते हुए या झलक दिखाते हुए कलात्मक सौन्दर्य प्रदर्शित करते हैं।

अब हम संक्षेप में रागों में भाषा विज्ञान की विशिष्ठता—'सन्निधि' को देखेंगे। इस सिद्धांत को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करने के लिए हम राग 'मालकौंस' और राग 'अड़ाना' की तुलना करेंगे (देखिए तालिका ३)।

राग 'मालकौंस की रचना में उसके समस्त पाँचों स्वरों के क्रम को उलट-पुलट सकते है। उदाहरण के लिए सा म ग॒ नी म ध॒ सां यासांनी ध॒ ध॒ म म ध॒ सां आदि। दूसरे शब्दों में उसके पाँचौ स्वरों को स्वतंत्र रूप से राग में प्रयुक्त किया जाना स्वीकृत है जो कि उसकी पाँच स्वरों की सन्निधि का पूर्ण स्वातंत्र्य है। यह स्थिति हिन्दी के निम्नलिखित वाक्य के समान है—

(12) राम यहाँ रोटी खाएगा।

जिसे हम इस तरह बदल सकते हैं:—

(13) राम रोटी यहाँ खाएगा।

(14) राम खाएगा यहाँ रोटी।

(15) राम रोटी खाएगा यहाँ।

(16) रोटी यहाँ राम खाएगा।

(17) खाएगा यहाँ राम रोटी।

(18) यहाँ खाएगा रोटी राम।

आगे भी आप जब तक इस वाक्य का गणितात्मक विवर्त कर सकते हैं और तब भी नं 12 वाक्य के समस्त सम्भावित विवर्तन का अर्थ मात्र—"राम यहाँ रोटी खाएगा" होगा। मैंने "यहाँ" को यह दर्शाने के लिए रेखांकित किया है कि वक्ता इकाई यहाँ पर हर स्थिति में बल दे रहा है। 'यहाँ' इकाई यहाँ पर वादी स्वर के समान

है। अगर इसके बदले हम 'खाएगा' को रेखांकित कर दें तब अर्थ थोड़ा-सा बदल जाएगा तब इकाई 'खाएगा' सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाएगी। तालिका 3 से भीमपलासी और धनाश्री रागों की स्वर पर बल देने की दृष्टि से (वादी स्वर) तुलना करें।

लेकिन अब राग 'अड़ाना' (तालिका 3) पर विचार करें जिसके स्वच्छन्द प्रदर्शन में अनेक बंधन हैं। हम इसके कुछ सन्निधि सम्बन्धी नियमों को दिखाते हैं। यहाँ अगर ग॒ आता है तो म को उसके बाद आना पड़ेगा। ग॒ के बाद सीधा रे पर जाया जाय यह सम्भव नहीं है। अगर संघटक ग॒ स्वर से रे पर जाना चाहता है। (अवरोह में) तो उसको पहले म पर जाना पड़ता है (बीच में क्रम उलटकर आरोहित होता है) इसी प्रकार से अगर वह अवरोह क्रम में नी॒ से आना चाहता है तो उसको प पर जाना पड़ता है। दूसरी ओर आरोह में प से रें या रें से नी या नी से सं स्वर तक जा सकता है। लेकिन वह सं से नी॒ तक सीधा नहीं जा सकता। अवरोह में सां से वह ध॒ पर जा सकता है नी॒ पर कभी नहीं। 'अड़ाना' राग के स्वरों के कुछ विवर्तित रूप निम्नलिखित हैं :—

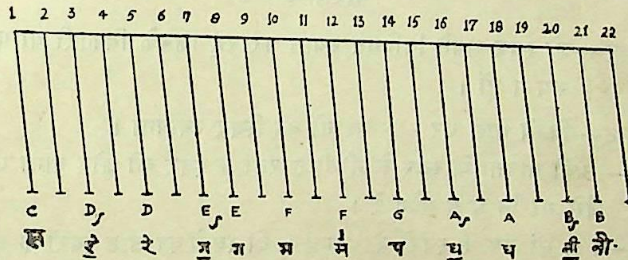
(1) सा, रे स, ग॒^म, म रे स, ग॒^म म/प, ध॒, रें सां, ध॒, नी, सां, सां/ध॒, नी, प, म प/ध॒^म म, म रे^स।

(2) सां, नी, सां, ध॒^नी नी सां, सां, नी॒ प, म, प, सां, ^प नी॒ प, म प ग॒^म,/ ग॒^म म रे सा, सा रे सा।

एक स्वर पर जो दूसरा स्वर लिखा है उसका अर्थ है ऊपर के स्वर को सामान्य पंक्तीय स्वर के बाद थोड़े से समय के लिए स्पर्श किया जाये। इस प्रकार ग॒^म का अर्थ है पहले ग॒ को लिया जाय और तब म को हल्के से छूआ जाय और शीघ्रता से आगे के पंक्तीय स्वर पर पहुँचा जाय (जो पुनः म हो सकता है जो ग॒^म था) एक स्वर से पूर्व अर्द्ध विराम सापेक्षित रूप से उस स्तर के लिए अधिक समय दर्शाता है और तब अगले स्वरों के समूह पर जाने से पूर्व थोड़ा-सा रुका जाय। यह विवर्तन, अड़ाना राग के स्वरों पर 'सन्निधि' के बन्धनों को पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट करता है। हम यह स्पष्ट देखते हैं कि कुछ स्वरों को एक-दूसरे के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक विवर्तित किया जा सकता है जैसे स और रे। जहाँ कि दूसरे स्वर केवल खास क्रम में आ सकते हैं जैसे ग॒ और म स्वर। यह स्थिति अँग्रेजी के वाक्य 2 और उसके 7 वें विवर्तित रूप तक तुलनीय है। जबकि 8 से 10 तक के वाक्यों में यह सम्भव नहीं है। हालांकि 2 से 7 और 8 से 10 वाक्यों की इकाइयाँ (पद और पदबन्ध) केवल समान ही नहीं हैं बल्कि वे स्वयं की पदबन्धीय सीमाओं के रूप में व्याकरणिक दृष्टि से भी सही है (जैसे 'a dog' स्वयं में सही पदबन्ध है परन्तु इसका कर्म के रूप में क्रिया से सम्बन्ध उसको 'watched' से पहले 9 या 10 में सन्निधि होने की अनुमति नहीं देता)।

रागों के और दूसरे इतने पक्ष हैं कि जिनकी भाषा के जितने पक्ष हैं उनसे तुलना की जा सकती है। लेकिन जैसा कि मेंने आरम्भ में सोचा था यह शोध-पत्र उससे अधिक लम्बा हो गया है। जो भी हो हम देख सकते हैं कि संगीत की स्वर-पद्धतियाँ और भाषा विज्ञान की पद्धतियाँ एक प्रकार से एक जैसे शास्त्रीय सिद्धान्तों द्वारा परिचालित हैं। एक भाषा दूसरी भाषा से अलग है। उदाहरण के लिए हिन्दी उर्दू, अँग्रेजी से भिन्न है। इसी प्रकार की भारत की 'सुर-भाषा' पश्चिम की 'सुर-भाषाओं से भिन्न हैं। अंग्रेजी की बहुत सी बोलियाँ हैं या उसके विभिन्न रूप बोले जाते हैं। इसी प्रकार भारतीय राग पद्धति में दो मुख्य राग भेद—Rag Dialects—हिन्दुस्तानी और कर्नाटक के होते हुए भी वे एक दूसरे में अनुवादत हो सकती है जैसे एक भाषा दूसरे में अनुवादित की जा सकती है उसी प्रकार भारतीय और पश्चिमी रागों की पद्धति में किसी प्रकार की अनुवाद क्षमता होनी ही चाहिए। इस प्रकार के अनुवाद में अनेकों कठिनाइयाँ निहित होगी जिसका इस शोध-पत्र में स्पष्ट समाधान नहीं सुझाया है। जो कुछ भी हो हम यहाँ 'संगीत भाषा विज्ञान' के प्रस्तुतीकरण[1] से सम्बन्ध रखते थे, विभिन्न संगीत पद्धतियों के तुलनात्मक अध्ययन से नहीं।

तालिका—1



टिप्पणी—भाग 1 देखिए (शोध-पत्र का) जिसमें विभिन्न श्रुतियों के अलग-अलग नाम दिए हैं। भारतीय स्वरलिपि पद्धति में कोमल स्वरों के नीचे रेखा खींची जाती है जैसे रे और तीव्र स्वर के ऊपर लम्बी रेखा खींची जाती है जे मं।

तालिका—2

स्वरों की प्रति सैकिण्ड आन्दोलन संख्याएँ

	भारतीय	पाश्चात्य
सा (C^1)	240	240
रे (Df)	254 2/17	256

1: इसके लिये मैंने कुछ अन्य भाषा वैज्ञानिक लिपि पद्धतियों को लागू किया है जो मेरी पुस्तक की पाद टिप्पणी 4 में Rythemic System of India की दृष्टि से है। इसके लिए मेरा शोध-पत्र "Metalinguestic structure of Indian Drumming : A study in Musico-linguistics" को देखिए। संगीत भाषा विज्ञान पर मैं वित्तारपूर्वक अपनी पुस्तक 'Musico-linguistics' A Study of music and linguistics प्रस्तुत करने जा रहा हूँ।

रे (D)	270		270	
ग॒ (Ef)	288		288	
ग (E)	301	17/43	300	
म (F)	320		320	
मं (Fs)	338	14/17	337	1/2
प (G)	360		360	
ध॒ (Af)	381	3/17	384	
ध (A)	405		400	
नी॒ (Bf)	432		432	
नी (B)	452	4/43	450	
सां (C^2)	480		480	

टिप्पणी—कोष्ठकों में मैंने स्वयं तुलना की दृष्टि से स्वर रखे हैं। यह मध्य सप्तक है। स्वर के ऊपर बिन्दु ऊँचे सप्तक (जैसे सां=C^2) को और नीचे बिन्दु (यहाँ नहीं बताया गया) नीचे अष्टक (सप्तक) को बताता है।

परिशिष्ट—1

अचल स्वर—जो स्वर अपने निश्चित स्थान पर रहें जिनके विकारी या परिवर्तित रूप न हों।

अचल थाट—किसी वाद्य पर स्वर-स्थानों की स्थिर स्थापना।

अवरोह—ऊँची तारता के स्वर से नीची तारता के स्वर की ओर गाना या बजाना जैसे सां नि ध प म ग रे।

अष्टक—स से सां तक 8 स्वरों का समूह। दो स्वरों का आठ स्वरों के अन्तर पर होना। भारतीय सप्तक के समान पाश्चात्य संगीत में तारता के आधार पर बने 8 स्वरों का विशिष्ट समूह।

आरोह—नीची तारता के स्वरों से ऊँची तारता के स्वरों की ओर गाना या बजाना।

औड़व राग—स्वर संख्या के आधार पर 5 स्वरों से युक्त रागों की जाति।

कण—किसी स्वर को उच्चरित करते समय उसके आगे या पीछे के स्वर का स्पर्श —देखिए भाग 3 में राग अड़ाना का विवरण।

की बोर्ड—पाश्चात्य पियानो जैसे वाद्यों में स्वर स्थापना का स्थान।

कॉमन टाइम—पाश्चात्य संगीत में चार-चार मात्राओं में वर्गीकृत ताल का एक प्रकार।

राग—ध्वनि की विशिष्ट रचना जिसमें स्वर तथा वर्णों (आरोह, अवरोह, स्थाई-संचारी) का सौन्दर्य हो और जो रंजन का गुण रखती हो। इसके 10 लक्षण हैं। नाद से श्रुति, श्रुति से स्वरों, स्वर से सप्तक, सप्तक से थाट और थाट से राग उत्पन्न होते हैं।

तालिका—3

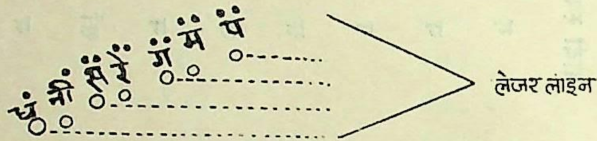
राग	आरोह क्रम	स्वर-संख्या	अवरोह क्रम	स्वर संख्या	वादी स्वर	सम्वादी स्वर
भूपाली	सा रे ग प ध सां	5	सां ध प ग रे स	5	ग	ध
शुद्ध कल्याण	सा रे ग प ध सां	5	सां नी ध प मं ग रे सा	7	ग	ध
तिलंग	सा ग म प नी सां	5	सां नी प म ग स	5	ग	नी
गुणकली	सा रे ग म प ध नी सां	7	सां नी ध प म ग रे सा	7	स	प
मालकौंस	स ग म ध नी सां	5	सां नी ध म ग सा	5	म	स
ललित	सा रे ग म-मं ध नी सां	6	सां नी ध म मं ग रे सा	6	म	स
अड़ाना	सा रे म प ध नी सां	6	सां ध नी प म प म ग म रे सा	6	सां	प
भीमपलासी	सा ग म प नी सां	5	सां नि ध प म ग रे सा	7	म	स
धनाश्री	सा ग म प नी सां	5	सां नी ध प म ग रे सां	7	प	स

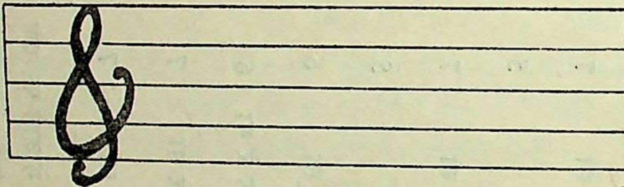
टिप्पणी—एक स्वर एक से अधिक बार आरोह या अवरोह के क्रम में आने पर एक ही बार गिना गया है जैसे सा और सां =सा । केवल अड़ाना राग में सां (या C^2) वादी स्वर है । शुद्ध और उसके विकृत स्वर को एक स्वर के रूप में गिना गया है जैसे कि वे ललित राग में (म मं) पास पास आए हैं इसलिए म को मे के रूप में लिखा है ।

राग जाति—औडव, पाड़व सम्पूर्ण इन्हीं के विभिन्न मेलों से गणित द्वारा 1 थाट से 484 राग जातियां बनती हैं और प्रचलित 10 थाटों से इस प्रकार 4840 जातियां बनी। देखिए औड़व, पाड़व सम्पूर्ण राग।

मेजर टोन—देखिए स्वारांतर।

लजर लाइन—पाश्चात्य स्वर लिपि पद्धति में मुख्य सीधी ग्यारह रेखाओं के अतिरिक्त अधिक ऊँची या नीची तारता के लिए बनी अतिरिक्त रेखाएँ।





वक्र स्वर—ऐसा स्वर जो किसी स्वर तक जाके वापस लौटे और फिर उसे लांघ कर, आगे बढ़ जाय तो वह लांघा गया स्वर वक्र स्वर हुआ ग म प म ध में प वक्र है।

वर्जित स्वर—राग के विवादी स्वर जो राग के वास्तविक अर्थ को विगाड़ते हैं। ये शत्रु स्वर हैं अतः राग में निषिद्ध हैं।

वादी स्वर—राग का प्रधान स्वर यही जीव स्वर और राग का प्राण है। राग सौन्दर्य, उसके गाने का समय तथा राग के रूप को प्रगट करने में सर्वाधिक महत्त्व रखता है।

विवादी स्वर—देखिए वर्जित स्वर।

श्रुति—भारतीय संगीत की ध्वनियों की लघुत्तम अर्थवती ध्वनि। सुरीली ध्वनियों के समूह से चुने गए 22 ऐसे स्थान जो तारता की दृष्टि से परस्पर ऊँचे नीचे हैं और जो संगीत उपयोगी है। इन्हीं पर सप्त स्वरों की स्थापना की गई।

षाडव राग—6 स्वरों से युक्त रागों की जाति।

सप्तक—नाद अर्थात ध्वनि की तारता के आधार पर उसके मन्द, मध्य और तार तीन भेद माने गए हैं जिनको नाद स्थान (Voice Register) कहते हैं। तारता के आधार पर 7 शुद्ध स्वरों की स्थापना करते हैं। सप्तक तीन हैं मन्द्र मध्य और तार मन्द्र के लिए स्वरों के नीचे बिन्दु (ऱे), तार के लिए स्वरों के ऊपर बिन्दु (गं) दिया जाता है। भारतीय संगीत में ये 7 स्वर स रे ग म प ध नि है जो मूल स्वर हैं नी के बाद पुनः जो सां है उसे नहीं गिनते। इसीलिए प्रस्तुत शोध-पत्र में बार-बार सप्तक की ओर ध्यान

दिलाया गया है। अत: शोध-पत्र में अष्टक का प्रयोग होते हुए भी भारतीय संगीत के संदर्भ में वह सप्तक ही है इसीलिए लेखक ने कोष्टक में सप्तक लिखा है। भारतीय पद्धति में राग निर्माण के समय भी जब तार सां गिना जाता है तो भी उसे अष्टक नहीं कहते वह सप्तक ही है।

संपूर्ण राग—7 स्वरों से युक्त रागों की जाति

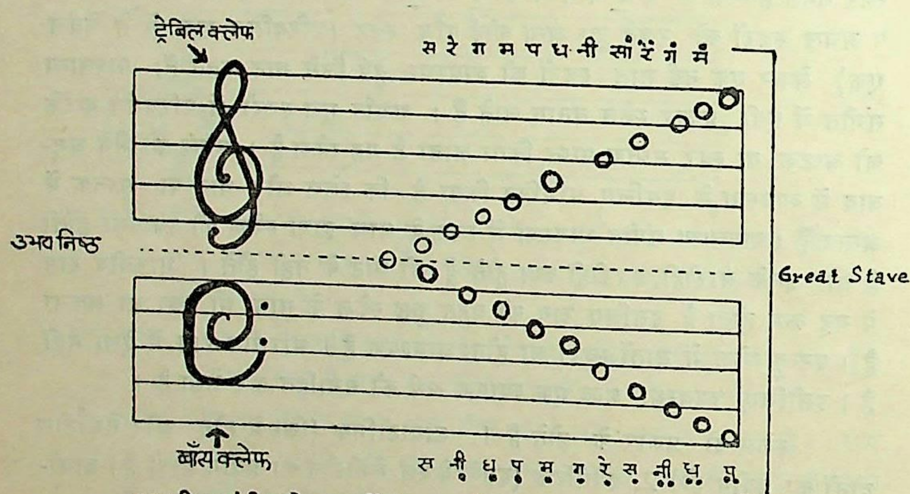
संवादी—रागों में आए स्वरों में एक ऐसा दूसरा स्वर जो वादी स्वर के कार्य में पूरी सहायता प्रदान करता है।

स्केल—पाश्चात्य संगीत में स्वरों की क्रमबद्ध व्यवस्था है। भारतीय संगीत में 7 मूल स्वर स रे ग म प ध नी में से पाँच स्वरों के विकृत रूपों के साथ 12 स्वर बनते हैं—स रे॒ रे ग॒ ग म मॅ प ध॒ ध न॒ नी सां। अब इन्हीं स्वरों में से स प अचल स्वरों को रखते हुए अन्य कोई पाँच स्वर (परिवर्तित रूप में से केवल एक) लेकर एक नई सात स्वरों की व्यवस्था हुई जिसे थाट कहते हैं; पाश्चात्य संगीत में इसी प्रकार स्केल बनाए जाते हैं। अर्थात मूल स्वरों में परिवर्तन करके जो अष्टक या स्वर सप्तक प्राप्त किया जाता है यह स्केल है। स्केल को मैंने अनुवाद में व्यवस्था से इसलिए अभिहित किया है कि स्केल और थाट या सप्तक में अन्तर है। पाश्चात्य संगीत व्यवस्था में स्वर के नाम द्वारा स्केल की स्थापना होती है और इनके आरोही अवरोही क्रम होते हैं जो थाट के नहीं होते। भारतीय राग में यह क्रम होता है इसलिए राग को वहुत कुछ स्केल के साथ भी देखा जा सकता है। परन्तु स्केल में सातों स्वरों का होना आवश्यक है। भारतीय राग में ऐसा नहीं है। इसीलिए 'व्यवस्था' शब्द एक व्यापक अर्थ को समाहित कर लेता है।

स्केल दो प्रकार के होते हैं 1. डायोटोनिक (जिसमें टोन और सेमीटोन दोनों का प्रयोग हो) 2. क्रोमैटिक (इसमें केवल सेमीटोन का प्रयोग होता है) डायोटोनिक स्केल भी दो प्रकार के हैं (1) मेजर स्केल और (3) माइनर स्केल।— मेजर स्केल—में टोन और सेमीटोन का क्रम विशेष प्रकार का होता है।

C—मेजर स्केल—पूर्ण स्वरांतर पर C स्वर से स्थापित किए गए शुद्ध स्वरों की व्यवस्था। भाग 1 में लेखक द्वारा वर्णित C मेजर स्केल के स्वरों का अर्थ इस प्रकार है—(1) पहला स्वर C टोनिक है क्योंकि इसी स्वर से स्केल का नामकरण किया गया है। (2) इसके तुरन्त बाद का दूसरा स्वर D सुपर टोनिक हैं। (3) तीसरा स्वर E इसीलिए मीडिएण्ट कह गया है क्योंकि वह टोनिक C और G जो डौमीनेन्ट है के मध्य में है। (4) चौथा स्वर F सब डौमीनेन्ट इसलिए है कि वह डौमीनेन्ट के नीचे है। (5) पाँचवां G डौमीनेन्ट (सम्वादी) है ही यह टोनिक (वादी) के बाद दूसरी महत्ता का है। (6) छटा स्वर A सब मीडिएन्ट इसलिए है कि मीडिएन्ट पहले और पाँचवें की बीच में था और यह C^2 या 8 वें और 5 वें स्वर के मध्य का है। (7) सातवाँ स्वर B लीडिंग टोन इसलिए है क्योंकि उसकी महत्ता C^2 या ऊँची तारता से मिलने की होती है।

स्टॉफ नोटेशन—पाश्चात्य स्वर लिपि पद्धति का नाम—जिसमें ग्यारह रेखाओं के ससूह को 'ग्रेट स्टेव' या 'ग्रेट स्टॉफ' कहा गया है। ये रेखाएँ दो भागों में बँटी हैं। प्रत्येक भाग में पाँच-पांच रेखाएँ हैं छठवीं रेखा ठीक मध्य में उभयनिष्ठ (common) मानी गई है। इन दो विभागों से दो सप्तक के स्वर लिपिबद्ध किए जा सकते हैं। ऊपर का भाग "ट्रेबिल क्लेफ" और नीचे का भाग "बॉस क्लेफ" कहलाता है। इस ल्वर लिपि पद्धति में ल्वरों के नाम नहीं दिए जाते केवल अंडाकार चिह्न बनाए जाते हैं। थोड़े ही स्वरों का अंकन करना हो तो 11 रेखाएँ खींची जायें यह आवश्यक नहीं है क्लेफ के हिसाब से ऊपर या नीचे की केवल 5 रेखाएँ खींचना पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त भी रेखाएँ खींची जा सकती हैं—देखिए लेजर लाइन।



भारतीय संगीत के स्वरों के नाम केवल स्पष्ट करने की दृष्टि से ही लिख दिए हैं

स्वर—नाद से श्रुति और विशिष्ट श्रुतियों पर स्वर स्थापित हैं भारतीय संगीत में इनके नाम (1) षड़ज, (2) रिषभ, (3) गंधार, (4) मध्यम, (5) पंचम, (6) धैवत, (7) निषाद हैं ये ही सब शुद्ध या मूल स्वर हैं। इन्हीं के उच्चरित नाप क्रमशः सा रे ग म प ध नी हैं। पाश्चात्य संगीत में स्वरों के लिखित नाम C D E F G A B C² है और उच्चरित नाम डो (Do) रे (Re) मी Me) फा (Fa) सोल (Sol) ले (Le) सी (si) डो (Do) है।

स्वर-विकृत स्वर—जिनमें विकार हो। भारतीय 5 स्वर रे ग म ध नी हैं जो नीची तारता पर विकृति होने पर कोमल और ऊँची तारता पर जाने पर तीव्र कहलाते हैं इनमें म विकृत होकर तीव्र एवं अन्य कोमल होते हैं। कोमल स्वर के नीचे—रेखा खींची जाती है ग॒ और तीव्र के ऊपर खड़ी रेखा (मं) खींचते हैं। पाश्चात्य संगीत तद्धति में 'सातों स्वर विकृत हो सकते हैं लिपि चिह्न स्वर लिपि

पद्धति के स्वतंत्र रूप से नहीं है। इन्हें flat और sharp कहा जाता है। भारतीय शुद्ध स्वरों को बिना किसी चिह्न के लिखा जाता है जैसे स रे ग म।

स्वरांतर—पाश्चात्य संगीत में दो स्वरों की दूरी दो शब्दों में व्यक्त की जाती है मेजरटोन और सेमीटोन। मोटे तौर पर मेजरटोन को पूर्ण स्वरांतर और सेमीटोन को अर्द्ध स्वरांनर कह सकते हैं।

परिशिष्ट–2

अपेक्षाएँ	Expectations
अवधारणा	Emphasis
अर्थ घटक	Sense Component
आकार	Shape
इकाई	Item
तारता	Pitch
घटक	Component
धारणा	Concept
पंक्तीय स्वर	Linear tone
रूपस्वनिम	Morpho phonemes
वाक	Speech
विवर्तित	Permutation
संगीत व्यवस्था	Musical Scale
संगीत प्रिय कान	Musical ear
संघठन	Composition
सन्निधि	Juxtaposition
सह अवस्थिति	Placement
सुर भाषाएँ	Tonal Language
स्वनिक घटक	Phonetic Component
स्वनिम	Phoneme
स्वर	Tone

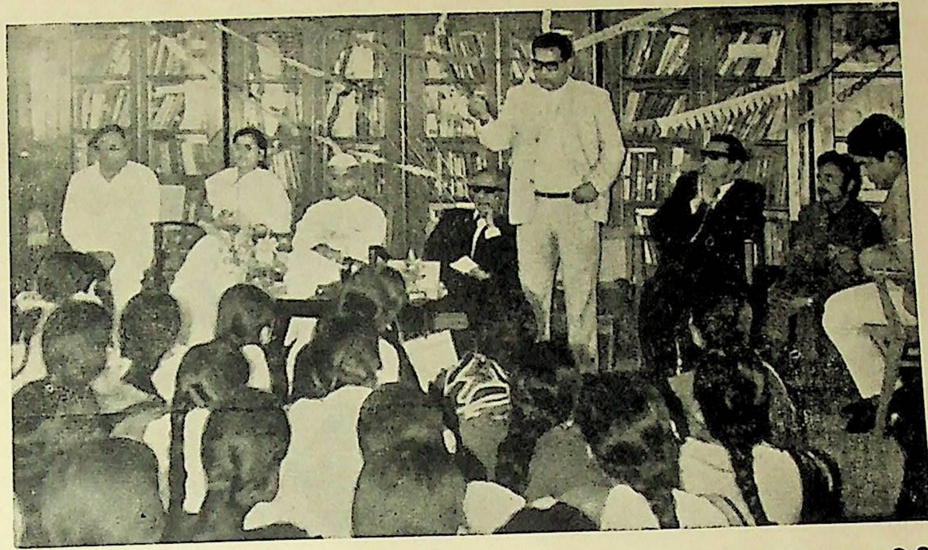
(डा० चन्दोला तथा डा० सरोजिनी शर्मा के प्रति हम आभार प्रदर्शित करते हैं, कि उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण शोध-पत्र को प्रकाशित करने की अनुमति हमें दी। यह शोध-पत्र अनुसंधान के क्षेत्र में एक नई दिशा का संकेत करता है। डा० सरोजिनी शर्मा MUSICO-LINGUISTICS पर डी० लिट० की उपाधि की दिशा में कार्य कर रही हैं—सम्पादक)

० ० ० ० ० ०

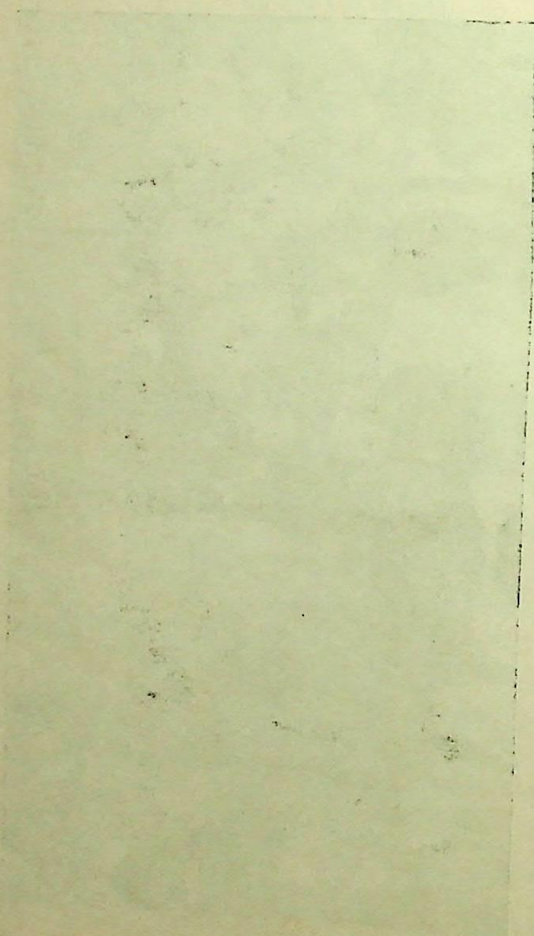
सम्पादकीय

लगभग सम्पूर्ण भारत के विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी अनुशासन की समस्या उभरती जा रही है। गत वर्ष में कुछ महीने तो ऐसे व्यतीत हुए थे जिनमें लगभग प्रत्येक प्रदेश के विश्वविद्यालय या तो बन्द थे या वहाँ गड़बड़ी थी। (यहाँ हमें यह कहते हुए हर्ष का अनुभव होता है कि कश्मीर विश्वविद्यालय किसी भी गड़बड़ी के कारण एक दिन के लिए भी बन्द नहीं किया गया था।) इस समस्या के अनेक पहलू हैं। बेरोजगारी, अभिभावकों का स्वार्थपरतापूर्ण उपेक्षा का भाव जोकि शिक्षकों से बेईमानी चाहता और करवाता है, शिक्षकों की अपने उत्तरदायित्त्व के प्रति उदासीनता तथा उनका अनैतिक आचरण, अधिकारियों के उच्चतम स्तर में घुसी हुई बेईमानी जो कि उचित पदों पर उपयुक्त व्यक्तियों के पहुँचने में बाधक होती है, सरकारी कार्यविधि की प्रशासनिक अक्षमता तथा उसमें फैला हुआ भ्रष्टाचार, सामान्य जनता का दिन प्रतिदिन गिरता हुआ चारित्रिक स्तर और आज के युवावर्ग में क्रमश: अंकुरित होती हुई अनास्था, अवज्ञा, संत्रास तथा विद्रोह की भावना, इन सबने मिलकर शिक्षा के ढांचे को झकझोर दिया है और समय आ गया है कि देश के नेता वह कदम उठाएँ जिससे यह गलाव रुके अन्यथा शिक्षा का यह ऊपरी ताजमहल शीघ्र ही डगमगाकर भ्रष्टाचार के कीचड़ में समा जायेगा। गले अंगों को काटने में यदि मानसिक क्लीबता ने बाधा दी तो यही अन्त होना है—ऐसा लगता है।

इस संदर्भ में हम, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नये अध्यक्ष श्री जैकब के हाल के बयान का स्वागत करते हैं, जिसमें उन्होंने विश्वविद्यालयी शिक्षा के विषय में कुछ सुझाव दिए हैं। उन्होंने कहा है कि विश्वविद्यालयों का कार्य मुख्यत: अनुसंधान का होना चाहिए। आवश्यकता यह भी है कि अनुसंधान के क्षेत्र में जो घपला-धाँधली है उसके उन्मूलन के लिए भी प्रयत्न किया जाय। पी-एच० डी० आदि उपाधियों के लुटाने के जो कारखाने आजकल चल रहे हैं उनकी उचित देखभाल होनी चाहिए—दूसरी ओर जो लोग अनुसंधान के क्षेत्र में असमर्थ हैं उन्हें इस दिशा में शक्तिदायक प्रेरणा दी जानी चाहिए अथवा उन्हें विश्वविद्यालय के क्षेत्र से हटा देना चाहिए।



डा० रमेशकुमार शर्मा द्वारा कृतज्ञता-ज्ञापन। बैठे हैं, डा० खान, श्रीमती कौल, मुख्य अतिथि, उपकुलपति, रजिस्ट्रार, तथा अन्य अतिथि गण।



उपलब्धियाँ

(१) इस वर्ष विभाग में **कुमारी नीना कौल** की प्रवक्ता के पद पर नियुक्ति हुई है। वे, विभाग में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से छात्रवृत्ति प्राप्त करके पिछले चार वर्षों से अनुसंधान एवं अध्यापन कार्य कर रही थीं। उन्हें बधाई है।

(२) **विमलाकुमारी मुंशी** ने १९७१ की एम० ए० की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया, कला संकाय में भी उनका स्थान एम० ए० के विद्यार्थियों में प्रथम था।

इन्द्रजीत कौर ने पूर्वार्द्ध एम० ए० की परीक्षा (१९७१) में प्रथम स्थान प्राप्त किया। दोनों को बधाई।

(३) कुमारी **नीना कौल** ने विभाग में शोध कार्य करके पी-एच० डी० की उपाधि के लिए अपना शोध-प्रबन्ध विश्वविद्यालय को प्रेषित किया है। विषय है :— "पं० श्रीराम शर्मा; व्यक्तित्व और कृतित्व।" **श्री त्रिलोकीनाथ गंजू** (विभाग में प्रवक्ता) छः मास में अपना शोध-कार्य समाप्त कर लेंगे।

(४) **कुमारी सन्तोष भट्ट** (पूर्वार्द्ध) ने अखिल भारतीय निबन्ध प्रतियोगिता में ५००) रु० का पुरस्कार जीता। **उन्होंने अंग्रेजी में निबन्ध लिखा था।**

(५) गत वर्ष विभाग में एम० ए० के छात्रों के प्रवेश में कड़ाई का प्रयोग किया गया। २५० आवेदकों में से केवल ३५ को प्रवेश दिया गया। स्नातकोत्तर शिक्षा के स्तर के संरक्षण के लिए यह किया गया।

विभाग में इस समय **नौ अनुसंधित्सु** पी-एच० डी० की दिशा में कार्य कर रहे हैं।

(६) विभाग में कश्मीरी भाषा के साहित्य पर जो अनुसंधान—अनुवाद-प्रकाशन का कार्य हुआ है उसकी भूरि-भूरि **प्रशंसा कश्मीर सरकार के सूचना विभाग तथा रेडियो कश्मीर** द्वारा की गई है। ऐसा उन दोनों ने अपने प्रकाशनों-प्रसारणों में किया है। यह हमारे लिए गर्व का विषय है।

(७) **श्री त्रिलोकीनाथ गंजू** (विभाग में प्रवक्ता) ने पूना तथा आगरा में कश्मीरी भाषा के ऊपर अपने शोधकार्य के विषय में प्रशिक्षण प्राप्त किया। श्री गंजू का यह शोध-कार्य अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। 'कश्मीरी भाषा के उद्गम तथा विकास' पर वे अनुसंधान कर रहे हैं। शिना भाषा का व्याकरण उन्होंने तैयार कर लिया है और इस वर्ष के अन्त तक वह प्रकाशित कर दिया जायगा। इसके अतिरिक्त कश्मीरी (तथा उसके विभिन्न क्षेत्रीय रूपों) के लगभग पाँच हजार शब्दों का संग्रह वे कर चुके हैं। इस शब्द-सम्पत्ति के प्रकाशन का आश्वासन उन्हें आगरा के क० मु० हिन्दी विद्यापीठ के निदेशक डा० रामविलास शर्मा ने दिया है। ग्रीयर्सन की प्रस्थापनाओं का खण्डन करने वाला यह शोध-कार्य* श्री गंजू, हिन्दी विभाग, तथा कश्मीर

---

* इस कार्य में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से प्राप्त धनराशि का सदुपयोग किया जा रहा है।

विश्वविद्यालय को अभूतपूर्व गौरव प्रदान करेगा, यह आशा भारत के ही नहीं संसार के भाषा वैज्ञानिकों को भी है। इस विषय में 'वितस्ता' में, अनेकानेक प्रशस्ति पत्र प्रकाशित होते रहते हैं।

'वितस्ता' के प्रकाशन में हमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कश्मीरी भाषा के शब्दों को मुद्रित करने के लिए विशेष चिह्नों की आवश्यकता पड़ती है जो कि श्रीनगर में उपलब्ध नहीं होते। इस दिशा में आगरा फाइन आर्ट प्रेस के स्वामी श्री गुलाबसिंह यादव ('नेताजी') का जो सहयोग हमें मिलता है उसके लिए हम उनके आभारी हैं। वे, बिना अतिरिक्त पैसा मांगे, उन चिह्नों को बनवाते हैं यह उनकी उदारता है। प्रूफ पढ़ने में जो सहायता चि० सुरेशचन्द्र शर्मा (प्रवक्ता हिन्दी विभाग, आगरा कालिज) ने हमें दी है उसके लिए वे हमारे आशीर्वाद तथा शुभ कामनाओं के पात्र हैं।

डा० अयूबखान, श्री त्रिलोकीनाथ गंजू, कुमारी नीना कौल तथा विमला मुंशी (अनुसंधित्सु) ने 'वितस्ता' के प्रकाशन कार्य में जो सहायता दी है उसके लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। पाठकों से निवेदन है कि वे अपनी निष्पक्ष सम्मति हमें अवश्य भेजें।

—रमेशकुमार शर्मा

० ० ० ० ० ०

आंख झुक कर 'हया' बन जाती है, उठकर 'दुआ' बन जाती है, तिरछी होकर 'अदा' बन जाती है, मिलकर 'वफा' बन जाती है, और फिरने पर 'क़ज़ा' बन जाती है।

—सम्पादक

० ० ० ० ० ०

जल में मछली, हरियाली में तोता, बाबा की गोद में नाती, कीचड़ में कीड़ा, कमल में भौंरा, भक्त के मुख में रामनाम, वेश्या में बेहयाई, दुष्ट में चापलूसी, हृष्ट-पुष्ट शरीर में विनय, सौन्दर्य में लज्जा, लोभी के मुख में झूठ, आलसी में चोरी, सुस्वादु भोजन में नमक, स्वाध्यायी के हाथ में पुस्तक तथा स्वार्थी व्यक्ति में धोखेबाजी बहुत फबते हैं।

—सम्पादक

वितस्ता

(मार्च १९७३)

सम्पादक :

डा० रमेशकुमार शर्मा,
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय,
अमरसिंह बाग, श्रीनगर, कश्मीर (भारत)

●

सहायक :

डॉ० मुहम्मद अयूब खान,
विजयमोहिनी कौल, एम० ए० (अनुसंधित्सु)
इन्द्रजीत कौर एम० ए० (उत्तरार्द्ध)

●

प्रकाशक :

हिन्दी परिषद्
हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय
अमरसिंह बाग, पो० नसीम बाग, श्रीनगर,
कश्मीर (भारत)

एक प्रति—२ रु०

खण्ड ८ अंक १

राष्ट्र-गान

जन-गण-मन अधिनायक जय हे !

भारत भाग्य विधाता

पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कलबंग,

विंध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधितरंग,

तव शुभनामे जागे, तव शुभ आशिष माँगे,

गाहे तव जय गाथा,

जन-गण मंगलदायक जय हे, भारत भाग्य विधाता

जय हे, जय हे, जय हे!

जय, जय, जय, जय हे !!



VITASTA

Journal of the Hindi Parishad of the Department of Hindi, University of Kashmir, Amarsingh bag, Srinagar, Kashmir, INDIA.

Vol. VIII MARCH 1973 No. 1

मुद्रक : आगरा फाइन आर्ट प्रेस, राजामण्डी, आगरा-२